स्वामी श्रीयुगलानन्यशरणजी महाराज विरचित

श्रीरघुवर गुण दर्पण

प्रकाशक :—

स्वामी सीतारामशरण जी महाराज

लक्ष्मणकिलाधीश

प्राप्ति स्थान :
स्वामी श्रीसीतारामशरण जी महाराज
लक्ष्मणकिलाधीश
अयोध्या

मूल्य १०.००

मुद्रक :
सत् साहित्य प्रकाशन
तुलसी नगर, अयोध्या

प्राक्कथन

आर्यावर्त भारतवर्ष की पवित्र तपोभूमि सदा से ऋषि महर्षियों सन्त महापुरुषों द्वारा अलंकृत होती रही है। ऐसे ही सिद्ध सन्त अनन्त श्रीविभूषित स्वामी श्री युगलानन्यशरण जी महाराज ने अपने लोकपावन विग्रह से सप्तपुरी शिरोमणि भूता दिव्यनगरी श्री अयोध्या के सुप्रसिद्ध आचार्य पीठ श्री लक्ष्मण-किला को प्रथम आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हो विशेष रूप से गौरवान्वित किया है। रसिक सम्प्रदाय में आपका विशिष्ट स्थान है। पूज्यचरण श्री स्वामी जी ने ९० ग्रन्थों की रचना की, सभी ग्रन्थ अपने में अनुपम हैं। आज भी रसिक भावुक भक्तगण उन ग्रन्थों का रसास्वादन कर परमानन्द सरोवर में निमज्जित हो कृतकृत्य हो रहे हैं।

आचार्य प्रवर स्वामी श्री युगलानन्यशरण जी महाराज के अद्‌भुत ग्रन्थों के सन्दर्भ में ही अकस्मात् मुझे "रघुवर-गुण दर्पण" ग्रन्थ के अवलोकन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। किंचित् दृष्टिपात से ही इस ग्रन्थ रत्न की झलक मेरे हृदय में अपनी उज्ज्वल रश्मियों की आभा विकीर्ण करने लगी और मन्त्र मुग्ध सी हो मैंने सम्पूर्ण ग्रन्थ का रसास्वादन किया। तत्काल ही हृदय में प्रकाशन का संकल्प भी उद्‌भूत हो गया पश्चात् आचार्यचरण स्वामी श्री सीताराम शरण जी महाराज लक्ष्मण किलाधीश जी की स्नेहमयी अनुमति प्राप्त कर मैं सफल मनोरथ हो गयी।

वस्तुतः "रघुवर गुरा दर्परा" रसिक जीवनधन प्राराधन श्रीजानकीवल्लभजू के अलौकिक अनन्त कल्यारा-गुरागराों का दर्शन कराने वाला एक दिव्य दर्परा है। इसमें श्री राघवेन्द्र रामभद्र के एक एक परम रमराीय गुरा भक्तों के सुखार्थ अत्यन्त स्वच्छ व उज्ज्वल छटा युक्त हो प्रतिबिम्बित हो उठे हैं। "श्री रघुवर गुरा दर्परा" के प्रारम्भ में ही श्री स्वामी जी ने गलतागादी जयपुर के परमाचार्य स्वामी श्री मधुराचार्य जी की वन्दना की है जिन्होंने श्री जानकी जीवन श्री रघुनन्दन के निर्मल "गुरा दर्परा" की रचना देववाराी संस्कृत में की थी उसी का हिन्दी भाषा में व्याख्यान श्री स्वामी जी महाराज ने किया है। "श्री रघुवर गुरा दर्परा" में जिस प्रकार परम मनोहर मधुर विविध विशेषराों से विभूषित वाक्यों का विन्यास किया गया है वह अद्‌भुत है। संभवतः अन्यत्र हिन्दी वाङ्मय में ऐसे रससिक्त विशेषराों का दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। प्रतीत होता है श्री स्वामी जी महाराज को अद्‌भुत सुषमा सम्पन्न श्री युगल सरकार के साक्षात् दर्शन हो रहे थे और लेखनी यथावत् उनके रूप गुराों को लेखबद्ध कर रही थी इसीलिये कहीं कहीं प्यार भरे विशेषरा दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे—रसिक चितचन्दन जगवन्दन दृगफन्दन श्री महाराज नन्दन जू। श्री कौशल्या-नन्दवर्धन मनोजमदमर्दन श्री महाराजकुलमण्डन भक्तचितचन्दन रघुनन्दन, भुवनभूषरा नवीन प्रवीरा आश्रित आर्तिहररा श्री महाराजसूनुजी गम्भीर धीर श्रीरघुबीर, चक्रवर्तीश्वर कुमार दिलदार गलहारजू, सर्वेश शिरमौर चितचोर सुकुमार कौशलेश कुमार श्री महाराजकिशोर रसरंगबोर चितचोर, राजकिशोर छबिजोर, कोशलेश

राजकिशोर, कोमल मनहरण वेश रसेश श्री कोशलेश, दशस्यन्दन-नन्दन जगद्वन्द्यवन्दन जीवनधन श्रीरघुनन्दन पूषणवंशावतंस जी इत्यादि अनेक रमणीय विशेषण स्वाभाविक ही चित्त को आकृष्ट कर लेते हैं।

एक एक गुण के आधार पर एक एक अध्याय का निर्माण इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है। महाराज श्री का कथन है कि जब भक्त अपने स्नेही परम प्रेमास्पद इष्ट मित्र रूपी प्यारे के मनोहर गुणों को यथार्थतः जान लेता है तभी स्नेह की दृढ़ता और ममत्व की अधिकता होती है तथा हृदय में जो भक्ति कल्पलता अंकुरित हुई है वह भी भगवद्गुण रूपी मधुररस के सिंचन से ही परिपुष्ट हो बढ़ती है अतएव भगवद्गुणों का रसास्वादन स्नेहियों के लिए परमावश्यक है और इसका सम्बन्ध सभी साधनों में नितान्त अपेक्षित है। यह रस श्री सद्गुरुओं के कृपाकटाक्ष से ही प्राप्त हो सकता है। अतएव सन्त पदपराग में छल छोड़कर अत्यन्त स्नेह करना चाहिये क्योंकि उनकी चरणधूलि के लिए स्वयं प्रभु भी उनका अनुगमन करते हैं। यह श्री सरकार का अनुकम्पागुण ही है और वैसा ही गाम्भीर्य और चातुर्य गुण भी है कि सब चतुरों की चतुराई निपुणाई श्री चतुर चूड़ामणि में सिमिट आई है। कैसा भी बिगड़ा हुआ कार्य क्यों न हो किंतु श्री महाराज किशोर जी अपनी चतुरता से उसें सहज ही में सवाँर देते हैं। सब ईश्वरों की चातुरी सरकार के चातुर्य सागर में बिन्दु सी हो जाती है। अतएव अनन्य भक्तों के सभी कार्य कोशलेश-कुमार के चातुर्य से ही सदा सम्पन्न हुआ करते हैं।

इस ग्रन्थ में श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में वर्णित दिव्य गुणों का भी अत्यन्त सरस वर्णन कर रस की धारा ही प्रवाहित कर दी है। यत्र तत्र उन श्लोकों का संकेत कर तथा पृथक् टिप्पणी देकर पू० श्री किलाधीश जी ने उन प्रसंगों को और भी सहजता से से स्पष्ट कर दिया है। वाल्मीकि रामायण में अवधनरेन्द्रनन्दन श्री रघुनन्दन के नखशिख का वर्णन श्री मारुति ने विदेहराज-किशोरी के समक्ष किया था। जिसके अन्तर्गत नयनारविन्द का वर्णन अनुपम ही है—रसिक चितचन्दन श्री रघुनन्दन जू के नयन मञ्जु-कञ्ज के निरादर करने वाले कजरारे रतनारे शीलसागर सुधासुधारे प्राणप्यारे विशाल डहडहे मनहरण और सुख के अयन हैं। श्री जानकीवर जी का मनोहर रूप तो ऐसा विलक्षण है कि जैसे चुम्बक को देखकर लोहा जड़ से उखड़ कर स्वयं उसमें लग जाता है ऐसा ही स्वभाव इस रूप का है। नर नारी सभी बरबस इस रूप से खींच लिये जाते हैं। लावण्य भी लोकोत्तर है जैसे मनोहर मोती के भीतर अत्यन्त तरलत्व झलक दिखायी देती है वैसे ही आपके नवीन अङ्गों में छटा अनुक्षण झिलमिलाती रहती है वही श्रीकिशोरी-प्राणवल्लभ जी का लावण्य है।

इस प्रकार श्री जानकीवल्लभजू के अनुपम गुणों का वर्णन कर लेने पर भी श्री महाराज जी को तृप्ति नहीं हुई और उन्होंने उनकी आह्लादिनी श्री लाडिली जू के अनुपम गुणों का संक्षिप्त संकेत अन्त में कर ही दिया कि अधिक क्या कहें—श्री सुकुमारी राजकिशोरी जी के बदन की ललाई में श्री लालजी लट्टू होकर बार बार छटा निहा-

रते रहते हैं। श्री किशोरी जी नित्य अखण्ड सौभाग्य लक्ष्मी से सम्पन्न हैं। श्री जानकी जी रघुनन्दन जी की प्राण जीवनी धर्मपत्नी हैं। उनके सुवासित अङ्गों पर मधुर मधुप हो मत्तता पूर्वक श्री रामभद्र गुञ्जार करते रहते हैं। सभी अङ्गों में सदा श्री लालजी बंधे रहते हैं किसी प्रकार छूट नहीं सकते क्योंकि यह स्वादमय बन्धन है। इस प्रकार अद्भुत अप्राकृत गुणों का विलक्षण विधि से व्याख्यान कर श्री महाराज जी ने स्पष्ट संकेत कर दिया है कि सुषमाखानि श्री जानकी जानि जू के जो सच्चे स्नेही हैं वे अपने नेत्रों में श्याम मणिमयी लाल की मूर्ति को चश्मे के समान लगाये रहते हैं उन्हें गौर श्याम के सिवाय अन्य कोई रङ्ग ही नहीं दिखायी देता है।

एतावता इस परमोत्कृष्ट ग्रन्थरत्न की प्रशंसा में जो कुछ भी कहा जाय स्वल्प ही है। पू० श्री स्वामी जी ने इस लघु ग्रन्थ रूपी गागर में अनन्त गुणरूपी सागर को भर दिया है यह कहना भी लघुता ही प्रतीत होती है। प्रकाशन काल में ही मुझे स्वान्तः सुखाय जिस सेवा का सुअवसर प्राप्त हुआ वह अवर्णनीय है। इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि श्रीराघवेन्द्र के गुणरूपी मेघों की रङ्गमयी छटा घटा के मध्य अलबेले युगल सरकार के साक्षात्कार के साथ ही साथ अद्भुत प्रीति रस का संचरण रोम रोम को आप्यायित कर देता था। विश्वास है कि "श्री रघुवर गुण दर्पण' के रसास्वादन से रसिक भावुक भक्तों को अवश्य एकबार श्री परमानन्द रससार सरोवर में निमज्जन करने का सौभाग्य प्राप्त होगा।

डॉ० सुनीता शास्त्री

श्रीरघुवर गुणदर्पण

卐 श्लोक 卐

दिव्यानन्तगुणाम्भोधिं महामाधुर्यमण्डितम् ।
भक्तानामिष्टदातारं जानकीवल्लभं भजे ॥१॥

वन्दे श्रीमद्गुरुं साक्षात् परमानन्दविग्रहम् ।
यत्कृपालेशतः पुंसां गोचरो रसिकाग्रणीः ॥२॥

प्रणम्य प्रीतिसम्पन्नान् रसिकान् गुणजीवनान्।
जानकीजीवनस्याथ गुणान् वक्ष्ये यथामतिः ॥३॥
भाषया सर्व रसिकानां बोधः सञ्जायतेऽधिकम्।
तस्मात् स्वभाषयेदानीं संकीर्त्यन्ते प्रभोर्गुणाः ॥४॥

वन्दे श्रीमधुराचार्यमार्यं सर्वगुणास्पदम् ।
योऽकरोज्जानकीजाने निर्मलं गुणदर्पणम ॥५॥

। वार्तिक हिन्दी ।

सर्वविधस्नेहसुलभ श्री जानकीवल्लभजी के जो महामाधुर्य-रसपागी बड़भागी अत्यन्त अनुरागी हैं, उनके मधुरमञ्जुवदनकञ्ज से वेश निदेश पाकर अति आनन्दितचित्त हो श्री जानकीरमण पदपङ्कज परागाश्रित मैं (युगलानन्यशरण) श्रीरघुनाथजी के रहस्य को अपने बुद्धिबल के अनुसार सारसंक्षेप करके वार्तिक हिन्दी भाषा में वर्णन करता हूँ। जिन लोगों के हृदयकमल में केवल श्रीरघुनाथ जी के अमल गुण श्रवणसुखास्वादन की वाँच्छा बनी रहती है, उनके लिए

यह परमजीवन रुप संजीवनीजड़ी है क्योंकि सज्जनों की समस्त संशयनिवारिणी श्रीअवधबिहारी जी की गुणगणमयी कीर्तिनिचय-चन्द्रिका सदा एकरस बनी रहती है। इस ग्रन्थ में श्री रघुनाथजी के केवल गुणों के ही अनूप स्वरूप का निरूपण भलीभाँति और सब प्रकार से किया जायगा क्योंकि भगवत् स्नेहियोंको विषादमय मतवादों से कुछ प्रयोजन नहीं। जबकि उन्हें श्रीप्राणजीवन के नवल अमल रसमय यशगुण और नामों के कीर्तन से ही लवनिमेषार्द्ध अवकाश नहीं है तो अन्य प्रकार की चर्चा उनके निकट कैसे हो सकती है ? अतएव इस ग्रन्थ में श्रीरघुनाथजी के केवल कमनीय गुणों का ही निरुपण किया जायगा।

यदि कहिये कि पहले ही गुणों के वर्णन से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? श्रवण, मनन और चित्तवृत्ति-निरोध करके यह करते तो ठीक होता। यहाँ उत्तर यह है कि भक्त जब तक श्री गुरुओं के द्वारा अपने स्नेही इष्टमित्ररूपी प्यारे के मनोहर गुणों को यथार्थ नहीं जानता, तब तक स्नेह की दृढ़ता और ममत्व की अधिकता उसको अति दुर्लभतर है और जो भक्ति कल्पलता उपजी है वह भी भगवद्-गुणरूपी मधुररस सींचे बिना नहीं बढ़ती। अतएव सर्वसाधनों की आशाओं को निरस्त कर श्रीरघुकुलावतंसजी के प्रशस्त गुणों का निरंतर श्रवण मनन निदिध्यासन स्नेहियों को अवश्य ही करना चाहिए। भगवद्गुणों का सम्बन्ध सब साधनों में रहना आवश्यक है।

तीनों लोक में वह कौन है जो श्रीराजीवनयन जी के समस्त दिव्य, भव्य नव्यातिनव्य गुणगणार्णव की थाह पा सकता हो ? कोई बुद्धिमान् भूमि के कणों को तारागणों को वा जलके सीकरों को चाहे भले ही गिन डाले परन्तु महाराजकुमार सरकार जू के गुण समुदाय को सब प्रकार से कहने में विधिहरिहरादिक भी असंख्य कल्पों में कहकर पार पाने में समर्थ नहीं हो सकते तो अन्य

मुझ सदृश कीट पतंगों की कौन बात है ? तो भी अपनी-अपनी रुचि और शुचि प्रेममति के अनुसार सब सज्जन वर्णन करते आये हैं। वैसे ही मैं भी अपनी वाणी के सफलतार्थ और प्रीतिप्रेरित रसिकजन प्रमोदार्थ श्रीरघुवरगुण निरूपण करता हूँ। इसे सुनकर सज्जन जनरंजन अपना सम्बन्धी विषय विचार कर हर्ष पावेंगे और जो भगवद्गुणास्वाद रहित है वे स्पर्द्धा भी करेंगे। पहले गुणों के नाम श्रवण करने चाहिये तब पीछे उनके लक्षणों का मनन करना चाहिये।

श्रीचक्रवर्तिचूड़ामणि महाराजकुमार जू के गुण चार प्रकार के उदार हैं। एक तो विश्व के उद्भव स्थिति और पालन के लिए हैं दूसरे भजनोपयोगी हैं। तीसरे आश्रित शरणोपयोगी हैं चौथे दिव्य भव्य मंगलमय चिद्घन श्याम सुन्दर श्रीविग्रह के गुण सर्वोपयोगी हैं। विशेष करके अनन्य रसिकों के तो प्राणजीवनधन हैं। इन चारों गुणों के श्रवणीय अभिराम नाम ये हैं :—

(१) ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य तेज ये छः गुण जिसमें हों, जो शरण्य हो, निरन्तर एकरस हो, वह भगवान् सुखों की खान कहलाता है[1] और भी दो दिव्य गुण उनके परम ललित हैं। एक तो यह कि उनका नाम कभी त्यागने योग्य नहीं है। दूसरा विरोधिरहित और सर्वदा अखण्ड होना। उक्त ये आठों गुण सृष्टि के कारणभूत हैं।

(२) सत्य ज्ञान अनन्त एकत्व विभुत्व अमलत्व स्वातन्त्र्य और आनन्द। ये गुण परम वेदान्त सिद्धान्तमय हैं। ये यद्यपि भजन करने वालों के परम जीवन हैं किन्तु केवल उन्हीं के जो परम निष्काम हैं और जिन्हें केवल स्वरूप बोध से प्रयोजन है।

---

1 ज्ञान शक्ति बलैश्वर्यवीर्य तेजांस्यशेषतः। भगवच्छब्दवाच्यानि बिना हेयैर्गुणादिभिः (विष्णु पुराण)।

(३) दया, कृपा अनुकम्पा, आनृशंस्य वात्सल्य सौशील्य, कारुण्य, क्षमा, गाम्भीर्य, औदार्य्य, स्थैर्य, धैर्य, चातुर्य, कृतित्व, कृतज्ञत्व, मार्दव, आर्जव, सौहार्द, इत्यादि श्रीरघुकुलावतंसजी के अन्तःकरण के गुण हैं। जो आश्रित शरणागतों के पोषक, रक्षक और परम सौलभ्य प्रतिपादक हैं। इन गुणों के अनुसन्धान से आश्रितजन अत्यन्त शीघ्रतर और अवश्य ही निःसन्देह श्रीप्राणवल्लभजी को प्राप्त करते हैं।

(४) सौन्दर्य, माधुर्य, सौगन्ध्य, सौकुमार्य, औज्ज्वल्य, लावण्य, रूपकान्ति, तारुण्य इत्यादि अनुपम मधुर रसालय गुण नित्य के परिकरनिकर और रसिक मुमुक्षुओं के चिन्तन करने योग्य हैं। जिससे ये मनोहर गुण समस्त इन्द्रिय विषयों के सहित मन की चञ्चलता को अनायास ही हर लेते हैं। इसी प्रकार श्रीमहाराज रघुनन्दनजी के गुण एकसे एक अनूठे सुखसागर उदार और अनन्त रसवन्त हैं। जैसे कोई प्रबल जन रत्नों के नगेन्द्र पर चढ़े तो अपनी शक्ति के अनुरूप ही उठावेगा समस्त तो ले नहीं सकेगा। ऐसे ही मनोहर दिव्य गुणमयी मूर्ति जानकीप्राणप्रियजी की है। जिसकी जितनी ही बल-बुद्धि है, वह उतना ही ग्रहण करता है। जो सहज निष्काम आत्माराम और मननशील श्रीरामानुरागी मुनिबर्य हैं, वे भी श्रीमनहरणजी के गुणों से ऐसे वशीभूत हो जाते हैं कि निरन्तर एकरस अनुचर के समान बने रहते हैं। ऐसा कौन अभागा आत्मघ्न होगा जिसको ये रंगीन गुण निश्छल भाव से नहीं सुहाते हों[१]।

श्रीजानकीवल्लभजी में देह, देही विभाग करना परम अभागपन है। जिनको उस माधुरी का स्वाद नहीं मिला है वे ही अज्ञ ऐसा

1 निवृत्ततर्षैरूपगीयमानाद् भवौषधात् श्रोत्रमनोऽभिरामात्। क उत्तमश्लोक गुणानुवादात् पुमान् विरज्येत बिना पशुघ्नात्।

विभाग कर सकते हैं।[1] श्रीजानकीरसिकजी के समस्त गुण, स्वर्गस्थ चिन्तामणि कामधेनु और सुरतरु को भी निरादर करने वाले, अभीष्ट-दायक और सुखदायक हैं। कोई गुण न्यूनता सम्पन्न नहीं हैं तथा एक से एक सभी विलक्षण हैं। अन्य ग्रन्थमत और वाद-विवाद त्याग कर केवल गुणनाम सुधा का आस्वादन ही स्नेहियों का कर्तव्य है।

अब लक्षण सहित गुणों का निरूपण करते हैं—प्रथम सकल जीव निस्तारिणी स्ववशविहारिणी विशेष विजया दया के विलक्षण गुण का वर्णन करता हूँ वह श्रवण कीजिये। अशंक अकलंक धर्म रूपी पर्यङ्क के चार चरण हैं। उनमें से दया प्रथम चरण है। दीन-हितकारिणी दया से हीन समस्त साधन एवं गुण व्यर्थ तथा अनर्थमय होते हैं अतएव उस दया के स्वरूप का अनूप भाँति से वर्णन करता हूँ। दया का सार सिद्धान्त और विलक्षण लक्षण यह कहा जाता है कि बिना स्वार्थ के ही जीव मात्र के निरन्तर मोद-विनोद को क्षण-क्षण सब प्रकार से चाहना। ऐसी जो श्रीमहाराज कुमार की अनूठी चित्तवृत्ति वही जागती गरजती हुई दया कहलाती है। उदासीन अरि मित्र इनमें करुणा रखनी यह भी दया है।

यदि कहो कि श्रीरघुनन्दनजी सभी पर दया करते हैं तो करोड़ों जीव दुःखी क्यों देखे जाते हैं? यहाँ उत्तर यह है कि आपकी शंका सत्य है परन्तु यहाँ भेद इतना ही है कि जो सरकार के विविध भाँति से अनन्य भक्त हैं उन पर तो उनके स्नेहानुसार दया विशेष बन्धन निवारिणि होती है और अन्यों पर इन्द्रिय शरीर दानादि द्वारा सामान्य रीति से निरन्तर बनी रहती है। यदि ऐसा न हो तो वेद की मर्यादा मिट जाय। अतएव सरकारी दया अधिकारा-

---

1 'सर्वेनित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित्-अर्थात् प्रभु के सभी विग्रह नित्य शाश्वत हैं हेय उपाधियों से रहित हैं प्राकृत नहीं हैं।

नुगुण सबों पर होती है। 'देङ्पालने' धातु से दया पद सिद्ध होता है। दयागुण के विचारने से श्रीमहाराजकुमार जी जीवमात्र के आधार सिद्ध हुए जो सबके आश्रय हैं। अतएव यह स्वारस्य स्पष्ट हुआ कि श्रीसर्वेश्वरजी स्वतन्त्र हैं और जीवमात्र पराधीन है। इससे भी यह भाव निकला कि पूजित सर्वेश्वरेश्वर जी अन्तर्यामी रूप से शरीरी हैं और सब जीव शरीर हैं।[1] इससे भी यह भाव प्रकाशित हुआ कि जैसे शरीरी शरीर का रक्षण पोषण प्रसिद्ध यत्नों के बिना ही किया करता है। वैसे ही उभय लोक में मेरी रक्षा सरकार अवश्य करेंगे इसमें संशयलेश भी नहीं यह दृढ़ विश्वास खास सुखरास हुआ। अब श्रीसद्गुरुओं के कृपाकटाक्ष से हम लोगों को इस अनुसन्धान से निर्भयत्व और चिन्तारहितत्व सब प्रकार से प्राप्त हुआ। अतः रे मन, तू उभय लोक की चिन्ता त्याग कर श्री जीवनप्राणजी के भजन-स्मरण में बार-बार अनुदिन सप्रेम मगन रह। दया गुण तो अपार है परन्तु मैंने उसी प्रभुकी इच्छा से निज बोधमोदार्थ कथन मात्र निरूपण किया है।

दो०-दया दयानिधिकी विशद, जौ लौ हृदय न भास।
तौ लौं चिन्तासहित मन, निस दिन रहितहुलास॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण विरचिते हिन्दी भाषा वार्तिक प्रबन्धे रघुबरगुणदर्पणे दयागुणप्रदर्शनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

—: ❀ ❀ :—

अब अतीव कमनीय काम-कलंक-शमनीय रमणीय द्वितीय कृपा गुणका वर्णन करता हूँ। अनुपम कृपागुण का परम लक्षण यही है कि सर्वेश्वरेश्वर श्रीजानकीवल्लभजी का जो इस प्रकार का

---

1 श्रुति कहती है यस्य आत्मा शरीरम् अर्थात् प्रभु का शरीर जीवात्मा है महर्षि बाल्मीकि भी कहते हैं—जगत्सर्वं शरीरन्ते—अर्थात् चराचर सम्पूर्ण जगत् आपका शरीर है।

सन्तत एकरस अनुसन्धान है कि मैं ही सब प्रकार से सब जीवों का रक्षक हूँ दूसरा नहीं यही कृपागुण है। अथवा अपनी सामर्थ्य के अधीन जीवों के बन्धनमोक्षादि कार्यों को मन ही से जानना। यही कृपागुण सरकार का वेद विदित है परम सामर्थ्य वाचक कृपा पद है। स्वर्ग नरक मुक्ति आदि सब श्रीराघवजी के अधीन हैं उनका यह कृपागुण मुख्य है। कृपा गुण का मुख्य स्वरूप यही है कि जो वस्तु बड़े बड़े साधनों से अतिश्रम से घुणाक्षरन्याय से प्राप्त होती है, वही पदार्थ केवल श्री कोशलेशकुमारजी के कृपाकटाक्ष से अनायास सविलास प्राप्त हो जाता है। श्रीरघुनन्दनजी की कृपा से सद्गुरु और सत्शास्त्र का लाभ होता है पुनः उनके सत्सङ्ग से नवीन रंग चढ़ता है। जहाँ जहाँ जिस जिस काल में श्रीजानकीवल्लभजी ने स्नेहियों की रक्षा की है केवल कृपागुण से ही जानना चाहिए।

श्रीरघुनन्दनजी के एक एक गुण के श्रवण मनन से समस्त गुणों की झलक हृदय में पड़ती है यह विलक्षणता है। जैसे रत्नों की अनूठी माला में सब रत्न होते हैं, मधु में सब रस होते हैं तीर्थ-राज में सब तीर्थ रहते हैं, वैसे ही सब गुण इनमें परस्पर मिले हुये हैं। श्रीरघुनन्दनजी को सब गुणों से अत्यन्त प्रीति है और सबों से प्रयोजन रहता है, व्यर्थ एक भी नहीं है। सर्वज्ञता सामर्थ्य आदि गुण आपमें जीवों के हित के लिये हैं। शौर्य वीर्य आदि गुण अनिष्ट निवारण पूर्वक उनके परम इष्ट को देने वाले हैं अतः सब गुण मङ्गलमय हैं। ऐश्वर्यगुण श्रवण से उत्पन्न हुई भक्ति भी संकोच को प्राप्त होती है। ऐश्वर्य यह है कि सदा मन-वाणी के परे दुष्प्राप्य, दुस्तर्क्य, विधि हरि-हरादि दुर्लभ और अचिन्त्यादि विशेषण सर्वप्रथम सामान्य प्रेमियों के केवल स्नेह को न्यून करने वाले हैं। अतएव सौलभ्य-प्रतिपादक दया-दिगुण प्रीतिमानों के निरन्तर भावनीय हैं। श्रीप्राणवल्लभजी के वात्सल्य सौशील्य आदि गुणों के श्रवणमात्र से मधुधारावत् अनव-च्छिन्न स्नेह बढ़ता है जिस स्नेह का नाम भक्ति है।

श्रीनारद अगस्त्यादिकों की सत्सम्मति से कैसा स्नेह करना चाहिये वह सुनिये । उपास्य का स्वभाव और स्नेहमय परत्व भली-भाँति जानकर सुदृढ़ और सबसे अधिक ममतास्पद निष्काम अष्टयाम सेवन ही उत्तमा भक्ति है । इसी से श्रीप्राण जीवन सभी योगी ज्ञानी आदि को छोड़कर भक्तों के वशीभूत होते हैं, संसृति तो अवान्तर रूप से अनायास छूट जाती है । इस उत्तम स्नेह को ज्ञान वैराग्य आदि साधनों की अपेक्षा नहीं होती, यह जीवों को कृतार्थ करने में परम स्वतन्त्र है किन्तु यह स्नेह श्रीरघुनन्दनजी के कृपाधीन हैं ।

श्रीजानकीवल्लभजी की कृपा के अनुसन्धान से हम सभी को क्या लाभ होता है ? वही अब कहा जाता है, चित्त देकर सुनिये । परम कृपाल नतपाल परम समर्थ सर्वगुण सम्पन्न परमेश्वर भक्तों के समीप सबकाल स्थित हैं तो हमें मुक्ति वा अन्तराय निवारणादि की क्या चिन्ता है ? सर्बदा कृपाबल से तमन्य रहना और अनालस्य हो रूप गुण नामामृत पान करना यही जीवन का परम लाभ है, रे लोलुप मन ! यह भलीभाँति विचार ।

❀ दोहा ❀

कृपासिन्धु आरतिहरन, सरनपाल रघुलाल ।
सब प्रकार समरथ प्रभु, तू तज चिन्ता जाल ।।

इति श्री युगलानन्यशरणविरचिते रघुवरगुणदर्पणे हिन्दीभाषावार्तिकप्रबन्धे कृपागुणवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

अब श्रीजानकीजीवन पदपङ्कज-पराग की करुणा से अनुपम अनूठे तृतीय अनुकम्पागुण का वर्णन करता हूँ, जो आश्रितों को सुधासम जिलाने वाली संजीवनी जड़ी है ।

शरणागत-पाल श्रीरघुलाल का ऐसा जो दिव्य संकलन हैं कि जो स्नेही हमारे द्वारा रक्षित हैं उनके नाना प्रकार के सुखसार अभिलाषाओं को अनुराग सहित पूर्ण करना, यही श्रीअनुकम्पागुण

का लक्षरण है । इसी में प्रभु का अचल और एकरस सहज स्नेह रहता है यही अनुकम्पागुरण है और यह परम प्रपन्न प्रेमियों को प्राप्त होता है । जो निर्वैर और समदर्शी महात्मा अनुक्षरणश्रीरघुनन्दन गुरणमनन करते तथा सब ओर से शान्तचित्त तथा उनके परम प्रेमी हैं । उनके पद पराग के लिये आप सर्वेश्वर पीछे-पीछे फिरते हैं और निजवदन सुखवदन से कहते हैं कि इनकी चरणधूलि हमारी पावनकारिरणी है । कुछ नयन उघार कर देखो तो प्रियतम का वचन कैसा विचित्र स्नेह-मय है ? यदि सरकार पावन हैं तो उनके संग अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं वे भी पवित्र हुये । इससे बढ़कर सन्तों का विशेषपरत्व क्या होगा ?[1]

अतएव सन्त-पदपराग में छल छोड़कर अत्यन्त स्नेह करना चाहिये । इस कथन में यह सार है कि ऐसे स्नेहरससागर प्राणजीवन के सिवा अन्य से प्रीति करना अत्यन्त अनुचित है । भक्तों के हृदयस्थ जितने प्रकार के अविद्यादि तम होते हैं वे केवल प्रभु के कृपा कटाक्ष रूपी अनुकम्पा से, बिना साधन के ही अनायास ही नष्ट हो जाते हैं । श्रीमद्वाल्मीकीय रामायरण के अरण्यकाण्ड आदि में बहुत स्थलों में यह गुरण विदित है, सो विचार लेना । इस गुरण के अनुसन्धान से यह विचित्र लाभ हुआ कि जैसे लोक में एक दो बार स्वामी रक्षा करते हैं फिर त्यागते हैं, वैसे ही सरकार भी करते होंगे । इस संदेह का अत्यन्त अभाव हुआ और अनुकम्पागुरण की अनुकम्पा से यह दृढ़

1 निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् । अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः । (भा०) प्रभु कहते हैं निष्काम, भजनशील, शान्त, वैर रहित समदर्शी महात्माओं के पीछे-पीछे मैं इसलिये चलता हूँ कि उनके चरणों की धूल उड़कर मुझपर पड़े और मैं पवित्र हो जाऊँ । प्रभु के रोम-रोम में कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड है अतः उनमें अनन्त जीव हैं उन्हीं को पवित्र करने के लिये प्रभु भक्तों के पीछे-पीछे चलकर उनके चरणों की धूलि प्राप्त करते हैं ग्रन्थकार का यही अभिप्राय है ।

निश्चय हुआ कि मुझे श्रीरघुवंशमणिजी कभी न भूलेंगे न त्यागेंगे। श्रीसीताकान्तजी की यह प्रतिज्ञा है कि दो बाण धारण, दो बार वचन उच्चारण, दो बार आश्रितों की स्थापना और दो बार एक अर्थी को दान देना ये बातें स्वप्न में भी वे नहीं करते हैं।[1] तो हम सबों के भी सब अपराध विस्मृत कर अनायास अवश्य ही अपनावेंगे और निज गुण विचार कर बिना प्रार्थना ही द्रवेंगे।

❀ दोहा ❀

प्रथम कृपा करि कर गहै, पुनि न तजै निज जान।
अनुकम्पा गुन इन्ह नवल, युगलानन्य बखान ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दी भाषावार्तिकप्रबन्धे रघुवरगुणदर्पणे अनुकम्पागुण प्रदर्शनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अब करुणासिन्धु दीनबन्धु श्रीरघुकुलावतंसजी का अतिकमनीयतर करुणागुण का वर्णन किया जाता है। इस मनोहर करुणागुण का यही अनुपम लक्षण है कि अपने स्नेहियों के दुःखरूप अनल के ताप से अर्थात् उनके दुःख असह्य होने से, मधुर मनमोहन जीवनधन श्रीरघुनन्दनजी का अत्यन्त कोमल मन माखन के समान द्रवीभूत हो जाता है। श्रीदशस्यन्दनप्राणप्रियजी यों तो सबके दुःख में दुःखी होते हैं किन्तु स्नेहियों के दुःख से विशेषतर दुःखी होते हैं। उनका

1 द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो द्विःस्थापयति नाश्रितान्। द्विश्शरं नाभिसन्धत्ते रामो द्विर्नाभिभाषते ॥

श्रीराघवेन्द्र याचकों को दो बार दान नहीं देते क्योंकि एक ही बार इतना अधिक देते हैं कि पुनः वह याचना के योग्य नहीं रहता। प्रभु अपने आश्रितों को दो बार स्थापित नहीं करते क्योंकि वे जिसको एक बार स्थापित कर देते हैं उसको कोई विचलित नहीं कर सकता है। श्रीरामभद्र दो बार शत्रुओं के लिए बाणों का प्रयोग नही करते क्योंकि एक ही बाण में शत्रुओं को नष्ट कर देते हैं। श्रीरामभद्र दो बार नहीं बोलते अर्थात् एक बार जो बोलते हैं उस पर दृढ़ रहते हैं।

यह स्वभाव ही पड़ा है कि आश्रितों के दुःख तनिक भी सुन पड़ने से उन्हें उद्वेग के साथ पीड़ा होती है और ऐसा मनहरण वचन उच्चारण करते हैं कि क्या करूँ कहाँ जाऊँ, किससे कहूँ, जिससे मेरे प्राणजीवन भक्तों का अत्यन्त क्लेश निवारण हो ।[1]

यद्यपि सरकार परम स्वतन्त्र हैं तो भी करुणा-दया के वश हो सामान्य जीवों के समान विह्वल हो जाते हैं । यही अनूठी ईश्वर की करुणा है जो केवल श्रीकोशलेशकुमार में नित्य पाई जाती है औरों में कभी-कभी बहुत थोड़ी । करुणा-दया से अपराधियों के अपराध भी शान्त होते हैं । इससे करुणावान् की शरण होनी चाहिये जब तक स्नेहियों के दुःख रहते हैं तब तक शतगुणित आप दुःखी होते हैं उनको प्रथम सुखी करके पीछे आप परम हर्ष को प्राप्त होते हैं । यह रहस्य श्रीमद्रामायण में सुग्रीवादिकों के प्रसङ्ग में स्पष्ट जानना ।

मनुष्य क्रूर से क्रूर वा विषयरसचूर भी हो पर एक बार आर्तिसहित शरण में आकर यदि कहे कि हमारी रक्षा कीजिये तो प्रलम्ब भुज उठाकर स्नेह संयुक्त तुरन्त उसे अङ्गीकार करते हैं । करुणा का स्वरूप निरूपण और कहाँ तक किया जाय, स्नेहियों की आगामी वेदना समझकर वह खेदयुक्त हो जाते हैं । सरकार सहज सुकुमार और स्वाभाविक करुणावान हैं । यह परम मनोहारिणी करुणा यद्यपि आर्त आश्रित मात्र के ऊपर होती है और सब आश्रित इसके अधिकारी हैं परन्तु विशेषतः कृपा (करुणा) के पात्र वे ही हैं जिनमें सब काल में एकरस नीचानुसन्धान कार्पण्य और मन-वचन शरीर से अव्यवधान दीनता बनी रहती है । वे ही करुणा के अधिकारी हैं । जो अपने को तृण से भी नीचा जानते हैं, तरु से भी बढ़कर

---

1 व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः' (वा० रा०) भक्तों के दुख श्रवणकर विशेष दुखी होते हैं ।

मानापमानरूपी शीत उष्ण सहते हैं और सबों को मान आदर देते हुये आप अभिमानशून्य रहते हैं, वे सब गुणों के भाजन है ।[1]

किसी किसी ने श्रीजानकीजीवनजी की करुणा को अविचार के कारण न्यून कहा है। यह समझ कर कि परेश में करुणा कहना अशोभित-युक्ति संगत नहीं है परन्तु ऐसा कहना अनुचित है। श्रीरघुवंशमणि में तो करुणा ऐसी शोभती है कि जैसे चन्द्रमा में सुधा, नेत्र में पुतली, पुष्प में सुगन्ध, रत्न में झलक ऐसी ही जन-सुखस्वादवर्द्धिनी करुणा परेश में रहती है। यदि करुणा न रहे तो परेश का स्वरूप पाषाण सम नीरस हो जाय और केवल बड़ाई मात्र रूक्षता शेष रह जायगी। श्रीजानकीवल्लभजी का यह एक प्रबल स्वभाव है कि कैसा भी अपराधी क्यों न हो, शरण में लेने पर उसे आत्मीय विचार कर फिर उसका अपराध सुखसारसरकार स्वप्न में भी नहीं देखते ऐसी प्रतिज्ञा वाल्मीकीय रामायण में बहुत ठौर है। इस प्रकार करुणा के श्रवण से यह विश्वास दृढ़ हुआ कि हमारे भावी दुःखादि अनिष्टों को सरकार अवश्य दूर करेंगे, और हम निश्चिन्त हो छल छोभ छोड़ भजन करेंगे। वह हमें अपना जानकर आप ही करुणा के सम्बन्ध से निज परात्पर पद में प्राप्त करेंगे। अतएव परेश में करुणागुण अवश्य ही होना चाहिए। करुणा न हो तो श्रीरघुराजजी महाराज की समस्त बड़ाई अरण्य रोदन के समान व्यर्थ हो जाय, इसलिए करुणा की अपेक्षा आवश्यक है।

निर्विकार श्री रघुनन्दनजी में अश्रुपातादि कैसे सम्भव है; इसका उत्तर सुनो। श्रीरघुकुलावतंसजी में और भक्तों में परस्पर आलम्बनोद्दीपन भाव रहता है, अर्थात् श्रीरघुनन्दनजी स्नेहियों के विषयावलम्बन हैं और भक्त श्रीरघुनन्दनजी के विषयावलम्बन हैं।

---

1 'तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

श्रीजानकीवल्लभजी के सौन्दर्य माधुर्य करुणादि भक्तों के उद्दीपन हैं और स्नेहियों की प्रीति प्रतीति सत्य समतादि श्रीरघुनन्दनजी के उद्दीपन हैं। भक्तगण श्रीरघुनन्दन के माधुर्यगुण के आश्रयावलम्बन हैं और श्रीरघुनन्दनजी भक्तजन के प्रीत्यादि गुणों के आश्रयावलम्बन हैं।

आठ स्थायी और आठ सात्विकभाव भक्त और भगवान् दोनों में पूर्णरूप से रहते हैं। रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय जुगुप्सा और विस्मय ये आठ स्थायी भाव हैं। इन्हीं के साथ सात्विकादि के मिलने से रस उत्पन्न होते हैं। स्तम्भ स्वेद रोमांच स्वरभंग कम्प वैवर्ण्य अश्रु और प्रलय ये आठ सात्विक भाव हैं। ये अन्तःकरण के सम्बन्ध से उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार तैंतीस व्यभिचारी भाव भी हैं। जिनमें से दस पाँच व दो-चार समय समय पर प्रायः हुआ करते हैं। निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि श्रम, मद, गर्व, शंका त्रास, उन्माद, अपस्मृति, मोह, मृत्यु, आलस्य जाड्य, लज्जा, स्मृति, अवहित्था, वितर्क चिन्ता, मति, धृति, हर्ष औत्सुक्य औग्न्य, चापल्य निद्रा, सुषुप्ति, जागरण, आवेग, व्याधि, असूया ये ही ३३ व्यभिचारी (सञ्चारी) हैं जो सब रसों में कुछ कुछ रहा करते हैं। ये श्रीरसराज जी में पूरे रूपवान् रहते हैं, इनके यद्यपि अनेक भेद हैं पर यहाँ संक्षिप्त ही कहे गये।

ये सभी लक्षण प्रेमी प्रेमपात्र दोनों में रहते हैं। जिससे अश्रुपातादिक उचित है और श्रीरघुनन्दनजी सिद्धोपायरूप हैं। जिनके लीलारूपी ललित प्रवाह से अनेक पापादि दुर्वासनारूपी सेतु अनायास ही बह जाते हैं। इस गुण के विविध अमल फल हैं जो अनुसन्धानकर्ता को प्रत्यक्ष प्राप्त होते हैं। विशेष तो यह मुख्य मनोरम फल है कि श्रीरघुनन्दनजी रक्षक और भक्त रक्ष्य हैं, यह हृदय में पत्थर की लकीर की भाँति दृढ़ प्रतीत हुई। यही सार फल है और उपास्य की ओर की निष्ठुरता भी निवृत हुई।

❀ दोहा ❀

दुखी सनेही पीरतें, सुखी सनेही मोद ।
. यह करुनागुन सुनि समुझि, युगलानन्य विनोद ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषावार्तिकप्रबन्धे रघुवरगुणदर्पणे करुणागुणवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

❀

श्रीजानकीविहारीजी के कृपाकटाक्षकोर से मनोहर पंचम गुण आनृशंस्य नामक वर्णन किया जाता है ।[1]

प्रशस्य आनृशंस्य का यही अनूठा और रंगदार लक्षण है कि स्वप्न में भी चित्त से परदार परधन हरण परद्रोह परापवाद नहीं करना और जो दण्डनीय हों उनको यथोचित दण्ड न देना । शत्रुओं को भी विशेष उपदेश एवं उनके क्षेमार्थ हित करना यही अपूर्व आनृशंस्य गुण है । जो केवल श्रीमहाराजकुमारजी में पाया जाता है, अन्य स्वरूपों में वैसा यथार्थतः नहीं । श्रीरघुराजजी ने समस्त सभा के मध्य भुज उठा जनसुखसदन श्रीवदन से निश्शंकरूप से इस प्रकार सुघोष किया कि विभीषण हो वा रावण हो संशय छोड़ उसे सादर ले आवो, वह मेरा परमप्रिय है । इसी प्रकार अनेक वचन श्रीरामायण के अन्तर्गत हैं जो उपासकों के गम्य हैं ।[2]

---

1 "आनृशंस्यं परो धर्मस्त्वत्त एव मया श्रुतः" (वाल्मीकि) श्री किशोरीजी ने श्री हनुमानजी से कहा कि प्रभु से कहना कि एक बार महल में संश्लेष के समय उनसे पूछा था कि आपको कौन धर्म प्रिय है तब आपने कहा था कि मुझे दूसरों के दुख को नहीं सहना यह आनृशंस्य धर्म प्रिय है ।

2 "आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया ।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम् ॥ वा० ॥

श्रीरघुनन्दन कहते हैं—सुग्रीव ! मैंने विभीषण को अभयदान दे दिया है । विभीषण हों या रावण ही क्यों न हो उसको ले आना ।

श्रीस्वामिनीजी ने भी शरणागतपालक वचन श्रीहनुमान्‌जी से सुन्दरकाण्ड में कहा है कि समस्त जीवमात्र ही अपराध के भाजन हैं परन्तु महात्मा को करुणा करना ही धर्म है। अतः राक्षसीगण वध योग्य नहीं किंच रक्षणीय हैं, क्योंकि ये मेरी निकट वासिनी हैं। [1]

श्रीरघुनन्दनजी ने तो एक विभीषण के शरण लेने में सभा रचकर सबसे पूछपाछ किया था और वह (विभीषण) भी मित्रभाव से भली विधि से मिले थे परन्तु श्रीजानकीजी में विचित्र और पवित्र शरणागतपालकत्व धर्म पाया जाता है। यह विचारने की बात है कि एक तो नारी वेदानधिकारिणी, उसमें भी राक्षसी, उसमें भी अत्यन्त विरोधिनी, उस पर श्रीश्रीस्वामिनीजी ने अलौकिक और परम स्नेह किया। इससे श्रीस्वामिनी जी में श्रीरघुनन्दनजी से भी अधिक वत्सलता सिद्ध है, यह दृढ़ निश्चय करके जानना चाहिए।

टिप्पणी

शरणागत वत्सल श्रीराघवेन्द्रने यह श्लोक श्रीमुख से कहा है जो कि आश्रितों का जीवन सर्वस्व है तथा श्रीरामानन्द सम्प्रदाय का चरम-मंत्र है यथा—

१–'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते;
अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।'

---

1 पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम।
कार्यं करुणमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति॥ (वा०)

पापी हो अथवा पुण्यात्मा अथवा वध के योग्य ही क्यों न हो महापुरुषों को तो ऐसे जीवों पर कृपा ही करनी चाहिए क्योंकि ऐसा एक भी मनुष्य नहीं है जिसने कभी अपराध नहीं किया हो।

एक बार भी 'मैं आपका हूँ' इस प्रकार कहने वाले शरणागत को मैं सब प्रकार के भय से मुक्त कर देता हूँ—सर्वदा के लिए ऐसा मेरा स्वतन्त्र व्रत है।

२–'मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम्। अर्थात् विभीषण मित्र भाव से मेरी शरण में आया है, दोष भी उसमें हो तो भी वह लेने योग्य है क्योंकि सन्त समाज में दोष युक्त शरणागत का भी त्याग नहीं होता है।

श्रीरघुनन्दन ने दोषयुक्त शरणागत का ग्रहण करना स्वीकार किया एवं एक बार 'मैं आपका हूँ' ऐसा कह देने मात्र से अभय देना स्वीकार किया। परमउदारचूड़ामणि शरणागतवत्सल श्रीरघुनन्दन की दृष्टि में शरणागतों के दोष देखकर भी उनको अपनाना न्याय युक्त कहा गया है किन्तु दोष देखना तो सिद्ध हुआ, भले ही दोषयुक्त शरणागत का ग्रहण कर लेते हैं। इधर श्रीजनकराजनन्दिनी की शरणागतवत्सलता में दोष का दर्शन ही नहीं हैं।

उनका तो सिद्धान्त है कि सभी प्रकार के चेतनों पर कृपा ही करनी चाहिए जब दुष्ट रावण का वध हो चुका तब विजय-सन्देश सुनाने के लिए श्रीमैथिली के समीप श्रीरघुन्दन ने श्रीहनुमान जी को भेजा। श्रीहनुमानजी ने विजय-सन्देश सुनाया श्रीजी अति प्रसन्न हुई। प्रसन्नता के कारण कण्ठावरोध हो गया। श्रीहनुमानजी ने पूछा कि मैंने प्रियतम का विजय-सन्देश सुनाया पर आप मुझ से बोल क्यों नहीं रही हैं? श्रीमैथिली ने उत्तर दिया कि आनन्दाधिक्य के कारण मेरा कण्ठ रुंध गया है तथा इससे सुन्दर कोई प्रत्युत्तर देने योग्य वचन नहीं देखती हूँ। पृथ्वी के समग्र स्वर्ण रत्नादि एवं तीनों लोकों का साम्राज्य भी इस वचन के ऊपर न्योछावर किए जायें तो भी इस वचन के योग्य नहीं होंगे इत्यादि, परस्पर बहुत से महत्व-

पूर्ण सम्वाद हुए अन्त में श्रीहनुमान्‌जी ने बद्धाञ्जलि होकर विनम्र भाव से श्रीमैथिली से प्रार्थना की हे जनकनन्दिनी ! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं इन राक्षसियों को मार डालूँ क्योंकि इन लोगों ने आप को बहुत ही कष्ट दिया है वस्तुतः यह घोर रूप हैं एवं घोर आचरण करने वाली हैं। अतः आप मुझको यह वरदान दें कि लात घूसों से इनको मारूँ तथा आपके प्रति अपराध करने वाली इन राक्षसियों के कर्ण, नासिका, हाथ, पांव काटकर चित्रवध कर डालूँ।

३–एवमुक्ता हनूमता वैदेही जनकात्मजा। उवाच धर्मं सहितं हनूमन्तं यशस्विनी' इस प्रकार से श्रीहनुमानजी के कहने पर यशस्विनी श्रीजनकनन्दिनी आश्रित रक्षण रूप परमधर्म से युक्त वचन बोलीं—

हे वानरराज ! राजा की सेवा के परवश राजाज्ञा से काम करने वाली, आज्ञा भंग करने पर दंड पाने वाली इन रावण की दासियों पर भला कौन कोप कर सकता है ? अर्थात् कोई भी सत्पुरुष इन पराधीन राक्षसियों पर कोप नहीं कर सकता।[1] आप तो वानरोत्तम हैं अर्थात् सुग्रीव की शरणागति कराने से यश पा चुके हैं एवं विभीषण शरणागति में सभी वानरों के विरोध करने पर भी विभीषण को स्वीकार करने का स्वामी से आपने अनुरोध किया इसलिए मैं आपको वानरों में उत्तम समझती हूँ। श्रीजनकनन्दिनी के इस कथन का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार इन राक्षसियों ने रावण के परवश होकर अपराध किया अतएव इस अपराध की भागिनी यह नहीं अपितु रावण है। रावण के मरने पर अब मुझको कहाँ सता रही हैं ? अतः सच्चिदानन्द भगवान् के अंशभूत सभी चेतन स्वरूपतः सच्चिदानन्द रूप हैं किन्तु माया के परवश होने परएवं माया के कार्य

1 राजसंश्रयवश्यानां कुर्वन्तीनां पराज्ञया।
विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद् वानरोत्तम !

मोहादि से ग्रस्त होकर प्रभु की आज्ञा उल्लंघन रूप अपराध करते हैं। यदि प्रभु कृपा से मोह रूपी रावण का वध हो जाय तो कोई जीव कभी अपराध नहीं कर सकता। अतः सारा का सारा दोष माया का एवं माया के कार्यभूत राग द्वेष शोक मोहादि माया परिवारों का है। जीव माया परवश होकर यदि प्रभु का अपराध करता हो तो मायातीत भगवद्रस रसिक आप सदृश महापुरुष को इन बद्ध जीवों पर कृपा करनी चाहिए न कि कोप करें तभी वानरोत्तम (वानर राज) नाम सार्थक होगा। विभीषण शरणागति में श्रीरामजी ने कपोत का दृष्टान्त देकर शरणागत के संरक्षण पर जोर दिया उसी प्रकार श्री जनकनन्दिनी ने ऋक्ष की गाथा कहकर शरणागत वत्सलता प्रकट की—

हे वानर श्रेष्ठ ! व्याघ्र के समीप पुराण में यह गाथा ऋक्ष ने गाई है कि दूसरे के उद्देश्य से किये हुए पापों को उसके प्रति अपकार रूप पाप को महापुरुष लोग नहीं अंगीकार करते हैं। जो अपकार करता है उसके प्रति अपकार नहीं करके रक्षा करने के आचार का ही पालन महापुरुष किया करते हैं क्योंकि सन्त महात्माओं का सदाचार ही अलंकार है।[1] ऋक्ष की कथा इस प्रकार है—

पूर्वकाल में किसी जंगल में एक बाघ के खदेड़ने से एक व्याध वृक्ष पर चढ़ गया। उस वृक्ष पर ऋक्ष-भालू निवास करता था। वृक्ष के समीप जाकर बाघ ने भालू से कहा कि तुम इस व्याध को अपने वृक्ष पर से नीचे गिरा दो क्योंकि हम लोगों का यह शत्रु है। भालू ने कहा कि मेरे निवास स्थान पर आये हुये इस व्याध को मैं

---

1 अयं व्याघ्र समीपे तु पुराणो धर्मसंस्थितः,
ऋक्षेण गीतः श्लोको मे तन्निबोध प्लवङ्गम।
न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्,
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः॥

नहीं गिराऊँगा ऐसा करने से शरणागति धर्म में महान कलंक होगा। ऐसा कहकर भालू सो गया, तब बाघ ने व्याध से कहा कि तुमको मैं छोड़ दूँगा, तुम सोये हुए भालू को वृक्ष से गिरा दो। व्याध ने सोये हुए भालू को वृक्ष पर से ढकेल दिया किन्तु पूर्व अभ्यास के बल से भालू वृक्ष शाखा को पकड़ कर बच गया नीचे नहीं गिरा। तब बाघ ने भालू से कहा, देखो कैसा यह दुष्ट व्याध है तुम्हारे साथ इसने विश्वासघात किया अतः अब इस विश्वासघाती व्याध को तुम नीचे ढकेल दो। इस प्रकार बार बार बाघ के कहने पर भी भालू ने व्याध को नीचे नहीं गिराया और बाघ से कहा कि मैं इस अपराधी की रक्षा करूँगा। शरणागति धर्म में अपराधियों की भी रक्षा की जाती है। श्रीजनकराजनन्दिनी ने इस गाथा को श्रीहनुमान्‌जी से कहकर इस अभयप्रदायक श्लोक के द्वारा अपना स्वभाव कहा है कि—

पापी हो या पुण्यात्मा हो अथवा वध के योग्य हो आर्य महापुरुष को तो ऐसे अपराधियों पर कृपा ही करनी चाहिये क्योंकि ऐसा एक भी जीव नहीं है जिसने अपराध न किया हो। कुछ न कुछ अपराध कभी न कभी सभी जीवों ने किया है अतः इन अपराधी जीवों पर कृपा करने से ही कृपा का उत्कर्ष है।[1] श्रीहनुमान्‌जी के समक्ष श्रीमैथिली के कथन का तात्पर्य यह है कि तुम्हारे विचार से यह राक्षसियाँ पापमय वध के योग्य हैं किन्तु मेरे विचार से तो दया की पात्र ही हैं क्योंकि मलिन के लिए ही स्नान की अपेक्षा होती है यदि ये राक्षसियाँ पुण्यमय होती तो इनकी रक्षा पुण्य से ही हो जाती हमारी क्या आवश्यकता होती ? हमारे लिए तो इनके पाप भेंट हैं, पुण्य नहीं। यदि कहो कि अपराधियों को दंड देना चाहिए यह धर्मशास्त्र की मर्यादा लुप्त हो जायगी इस पर श्रीमैथिली का

1 "पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवंगम।
कार्यं करुणमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति"॥

यह कथन श्रीहनुमान्‌जी से है कि महा अपराधी शरणागत की रक्षा करना इस विशेष धर्म के समक्ष सामान्य धर्म शिथिल हो जाता है। धर्मशास्त्र सामान्य जीवों के लिए है। शरणागत रक्षण रूप विशेष शास्त्र शरण आए हुए विशेष जीवों के लिए है। अतः दोनों धर्म अपने-अपने स्थल में लागू हैं। इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जी से कह कर श्रीजनकराजनन्दिनी ने अपराधिनी राक्षसियों की रक्षा की। तभी तो स्वामी श्रीपराशरभट्ट ने कहा है—

हे माता मैथिलि ! राक्षसराजपुरी लङ्का में अपने विषय में नित्य नवीन अपराध करने वाली उन राक्षसियों को बिना शरणागति किये ही उन पर रुष्ट श्रीहनुमान्‌जी से अनेक हेतुदर्शक वाक्यों के द्वारा रक्षा करके आपने रघुकुलभूषण श्रीराघवेन्द्र की सभा को अत्यन्त लघु कर दिया क्योंकि जयन्त तथा विभीषण को 'मैं आपका हूँ' इस प्रकार शरणागति करने पर श्रीराघवेन्द्र ने उनकी रक्षा की। आप अपने क्षमागुण की प्रबलता से शरणागति की अपेक्षा न करके केवल अहैतुकी कृपा से ही रक्षा करती हैं। अतः आपकी क्षमा हमारे सदृश महान् अपराधियों को सुखी करे।[1] सुन्दरकाण्ड में त्रिजटाने जब श्रीराम-विजय सूचक स्वप्न का दर्शन किया तभी सभी राक्षसियों से कहा कि श्रीवैदेही से क्षमा याचना कर लो राघवके द्वारा राक्षसों को घोर भय उपस्थित हुआ है। यद्यपि हमलोगों ने श्रीवैदेही को बहुत कुछ फटकारा है किन्तु प्रणाम मात्र से श्रीमैथिली प्रसन्न होती हैं अतः हम सब राक्ष-

---

1 मातर्मैथिलि राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता। काकं तञ्च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः सा नः सान्द्रमहागसस्सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी ॥

सियों के महान् भय से रक्षा के लिए प्रणतिमात्र ही पर्याप्त है ?[1] किन्तु यह विचार राक्षसियों का स्वगोष्ठीगत ही रह गया। राक्षसियों ने प्रणाम नहीं किया यथा :—

जब राक्षसियों के मुख से श्रीमैथिली ने प्रियतम विजय सूचक स्वप्न का श्रवण किया तब अपनी ओर से ही उन राक्षसियों से कहा यदि सचमुच मेरे प्रियतम विजयी होंगे, तो तुम लोगों की रक्षा मैं सब प्रकार से करूँगी।[2] इस वचन की सार्थकता युद्धकांड में हुई जो कि उपर्युक्त प्रसङ्ग में विवेचन किया गया।

कोई कोई महानुभाव 'प्रणिपात प्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा' इस रामायण वचन से श्रीमैथिली की करुणा भी प्रणिपात हेतुक है ऐसा संशय करते हैं। किन्तु यह संशय अप्रामाणिक है क्योंकि त्रिजटाने अपनी बुद्धि के अनुसार ही श्रीमैथिली को 'प्रणिपातप्रसन्ना' कहा है। जब त्रिजटाको स्वप्न दर्शन हुआ एवं मैथिली के अभ्युदयकाल का आगमन जान लिया तब राक्षसियों से कहा कि इनको पीड़ा मत दो इनकी शरण में चलो। रावण के मरने के बाद यह हम सब की रक्षा करेंगी। राक्षसियों ने संशय किया कि महाअपराध करने वाली हम सबकी रक्षा यह कैसे करेंगी? इस शंका के समाधान में त्रिजटा ने कहा कि घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है। श्रीमैथिली तो प्रणतिमात्र से प्रसन्न होने वाली हैं, हम सब की रक्षा अवश्य करेंगी। यह समाधान त्रिजटा का अपने विचार के

---

1 भर्त्सितामपि याचध्वं राक्षस्यः किं विवक्षया
राघवाद्धि भयं घोरं राक्षसानामुपस्थितम् ।
प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा
अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात् ॥

2 'ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुर्विजयहर्षिता ।
अवोचद्यदि तत्तथ्यं भवेयं शरणं हि वः ॥'

अनुसार ही है श्रीमैथिली का यह धर्म नहीं है। यद्यपि रावण का वध हो गया किन्तु जब तक राक्षसियों को यह पता नहीं चला था तब तक राक्षसियाँ श्रीमैथिली को कष्ट दे रहीं थीं। इसलिए तो उनका अपराध 'आर्द्र अपराध' अर्थात् ताजे अपराध के नाम से विख्यात है। कुछ क्षण के बाद ही चित्रवध करने पर उद्यत हुए श्रीहनुमान्-जी से इन राक्षसियों की रक्षा की एवं अपने विषय में महान् अपराध करने वाले काकासुर जयन्त को विमुख गिरने पर श्रीरघुनन्दन के चरणारविन्द के सम्मुख कर दिया।

श्रीमैथिली की अहैतुकी क्षमा इन प्रमाणों से निर्विवाद सिद्ध हुई। इस शंका का परिहार 'श्रीगुणसुधासार लहरीस्तोत्र' में श्रीवीरराघवाचार्य ने इस प्रकार किया है—

हे जननि ! श्रीपराशरभट्ट स्वामी ने 'श्रीगुणरत्नकोष' में आपकी अहैतुकी क्षमा का वर्णन किया है किन्तु कुछ जड़ बुद्धि वाले ऐसा कहते हैं कि श्रीमिथिलेशनन्दिनी प्रणति से प्रसन्न होती हैं अतः अहैतुकी करुणा है। बिना बिचारे ही ऐसा कथन हो सकता है। अपनी बुद्धि से ही त्रिजटा ने कहा है कि श्रीमैथिली प्रणिपात से प्रसन्न होती हैं। हे राजीवलोचन प्रियतमे ! आपका 'प्रणिपात प्रसन्नता' यह धर्म नहीं है। आप तो अहैतुकी करुणा की सागर हैं तभी तो एकाक्षी प्रभृति विख्यात हिंसा परायण ताजे अपराध करने वाली राक्षसियों की श्रीहनुमान्जी से रक्षा की। [1]

---

1 तव क्षान्तिं भट्टारकगुरुरवादीत्तवनुतावकस्मादुद्भूतामिह जननि केचिज्जडधितः। प्रसन्ना हीत्युक्तेः प्रणिपतनतो मैथिलसुता सहेतुस्सापिस्यादितिजगदुरापातमतितः॥ स्वबुद्ध्यैव प्रोक्तं प्रणतसुमुखीति त्रिजटया न चैतद्धर्मस्ते नलिनदलनेत्रप्रियतमे। यदेकाक्षी प्रख्यायत बहुलहिंसानवधिक प्रवृद्धार्द्रागस्काः पवनतनयाद्रक्षितवती॥

इस आनृशंस्य गुण के अनुसन्धान से यह लाभ है कि श्रीयुगल सरकार शरणसम्बन्ध विचार कर अत्यन्त असह्य और हम सबों के निरन्तर असाध्य अपराधों को भी अवश्य दूर करेंगे और भलीभाँति अपनावेंगे इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं। आनृशंस्यगुण के श्रवण मनन से यह अनूप फल प्राप्त हुआ।

❀ दोहा ❀

आनृशंस्य परमोद घन, गुन सुनि मन मति धीर।
सहज विहाय अशेष भय, भजु श्रीप्रद रघुवीर॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण विरचिते श्रीरघुवरगुणदर्पणेहिन्दी-भाषा वार्तिक प्रबन्धे आनृशंस्यगुण प्रदर्शनं नाम पञ्चमोऽध्याय: ॥५॥

—❀—

भुवनभूषण श्रीमहाराजसूनुजी के अदूषण आनुक्रोशगुण का निजमतिवैभवानुसार वर्णन करता हूँ। आनुक्रोश का यह विलक्षण लक्षण है कि निज सम्बन्ध संयोग से यदि स्नेहियों को कुछ पीड़ा प्राप्त हुई अथवा और किसी प्रकार से उसको बार-बार स्मरण कर अताप हृदय में पश्चात्ताप होना यही सुखकोश आनुक्रोश गुण अनुपम स्नेहियों को परम मोदप्रद जीवनाधार और अनुग्रह हेतु है। इस गुण के स्वरूप के प्रतिपादक श्रीकोशलेशकुमारजी के मधुर वचन श्रीअयोध्याकाण्डादि में प्रमाण रूप बहुत हैं। भक्तचित्तचन्दन श्रीरघुनन्दनजीने कहा कि श्रीमहारानी महाराज (माता-पिता) का वियोगदु:ख हमारे लिये अतिशय गात्रदाहक और अकथनीय है और भी मित्रपरिजनादिकों का इसी भाँति विचारना। इस दिव्यातिदिव्य आनुक्रोशगुण श्रवण से यह सन्तोष भरोसा प्राप्त हुआ कि हा! ऐसे सुशील सर्वगुण सम्पन्न प्रभु के पदपङ्कजों को छोड़ वृथा इतने दिन आंव बांव निन्दा स्तुति करते गवांये और यथार्थ स्वाद सुख तनिक न पाया, जिससे बारबार हमें धिक्कार है। मेरे समान पामर,

अधम, खल दुष्टसिरताज कृतघ्न राज कोई न हुआ न होगा न है। जिस कारण हमने तुच्छ फोकट नेह-नातों में मिलकर ऐसे स्नेह सागर को विसार दिया। अब तो आज से क्षणमात्र भी श्रीजानकी-वल्लभजी के गुणगण नामादि का बिना चिन्तन किये अन्य कार्यों को हलाहलके समान जहर मानकर त्याग देंगे। जो बीता सो बीता अब अनर्थ कार्य में व्यर्थ नहीं बीतेगा। अब संसाररूपी दावानल के ताप से निकल कर केवल मधुर रसमय अनूप शीतल स्वरूप का छल कपट छोड़ स्मरण करेंगे, यही जीवन का अमल फल है।

❀ दोहा ❀

निजजन पीर अधीर ह्वै, सुमिरत श्रीरघुवीर।
इहै सुभग अनुक्रोस गुन, सब प्रकार गम्भीर॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषावार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे आनुक्रोशगुणवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अब परममंगलायतन सगुण श्रीजानकी जीवन का दमगुण वर्णन किया जाता है। दुर्जय इन्द्रिय रूप दैत्यगण का सघन बन को भलीभांति जीतना अथवा नाश करना ही दम गुण का सुन्दर लक्षण विचक्षण गुण वर्णन करते हैं। इस गुण के अधिकारी दो हैं, जिनको यह यह अपेक्ष्य है। एक मुमुक्षु, दूसरे नवीन योगी। श्रीरघुनाथजी के परेशपूज्य पादपङ्कज में तो दोनों अधिकारी का अभाव है। अतः मारजित् श्रीराजकुमार जी में लक्षणा करके हृषीकेशत्व सूचित किया। दम पद इन्द्रियजयपरक है अतएव हृषीकेश नाम सिद्ध हुआ। करोड़ों राजकन्या और गन्धर्व देवकिन्नर कन्याओं के साथ रमण और हासविलास करने पर भी श्रीनायक-शिरोमणि वशीभूत नहीं हुए किन्तु अपने ही वश में उनको किया। अतः दम गुण स्वाभाविक और एकरस है क्योंकि श्रीरघुकुलावतंस जी परदारस्पर्श वा परदारावलोकन स्वप्न में भी नहीं करते। इस

गुण के अनुसन्धान से अनायास ही जितेन्द्रियत्व का लाभ हुआ। आचार्यों ने जिन इन्द्रियों के निरोध के लिये कठिन और असाध्य अनेक योगादि साधन निरूपण किये हैं, उनका लाभ बिना यत्न के ही श्रीरघुनन्दन जी के दमगुणानुसन्धान से होता है तो भी अभागों की रुचि इस गुण में तनिक नहीं होती। जिससे वे अनेक संसृति जन्मग्रहण के दुःख सहते हैं।

दम दुर्जय-इन्द्री-दमन, समन सकल सन्ताप।
युगलानन्यसरन भजु निसिदिन गुनगन थाप ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषावार्तिक प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे दमगुणवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अब श्रीसार्वभौमसूनूजी का अनुपम शमगुण यथाश्रुत निरूपण किया जाता है। प्रबलतम महारिपु मन को जीतना और वश में करना यही शमगुण का जनरक्षण लक्षण है। ऐसा शम योगियों की योगसिद्धि में मुख्य उपायभूत और विवेकियों के स्वरूप—लयकारी हेतु हैं परन्तु सरकार में केवल लक्षणावृत्ति से सिद्ध होता है, प्रत्यक्ष असम्भव है। जिसमें शमादिक जीवों के सहायक साधन हैं और ईश में शमादिक स्वतः हैं, अतएव सहस्रनाम में योगीश्वर पद विदित है।

यदि कहो कि श्रीरघुनन्दनजी में शमादि गुण कैसे संघटित होते हैं ? तो सुनो, लीला प्रकरण में तो ये परमशोभाप्रद हैं जिससे अचांचल्य राजकुमारों का परम भूषण है और नित्य स्वरूप में यह योगीश्वर पद से सिद्ध है। इस जीव को तो पांचों विषय बल पूर्वक अपनी ओर खींचते हैं। यह विचारने की बात है जब एक एक विषय के संयोग से पतंग मातंग कुरंग भृङ्ग मीन नष्ट होते रहते हैं तो जिस मनुष्य में पांचों यथार्थतः रहा करते हैं उनकी कैसी दशा होनी

चाहिये । [1] एक जीव के साथ वे पाँचों विषय इस प्रकार लगे रहते हैं जैसे अजा के साथ बृकबृन्द और धनी के साथ लुटेरे। जो आप ही परम दुस्तर गंभीर दुःखसागर में मग्न हैं वे हमको क्या आनन्द देंगे और ऐसे जीवों से प्रीति करके क्या प्राप्त होगा ? अतः सर्वोपरि विराजमान परम स्वतन्त्र सर्वेश्वर कृपालु हृषीकेश की शरण में निजानन्दार्थ, सम्बन्धप्रतिपालनार्थ और भय निवारणार्थ अवश्य ही प्राप्त हो जाना चाहिये।

इस सरस शमगुणानुसन्धान से मनकी लयाकार वृत्ति अनायास ही नामरूपमाधुरी में हो जाती है, संशय नहीं। ये गुण चिद्घन चिन्तामणि स्वरूप हैं। निरन्तर गुणों के कहने सुनने से जो मोद विनोद स्नेहियों को प्राप्त होता है उसे वे ही जान सकते हैं। सबों का सिद्धान्त गुणकथन में है। मैंने भलीभाँति सब मतान्तर देखकर निर्णय किया है, परम सारसिद्धान्त भ्रांतिहारी प्रियगुणगण कथन है।

मन निरोध कारण विसद, बोध हेत सम मित्र ।
तातें श्रीरघुवीर गुन, गुनिये परम पवित्र ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण विरचिते हिन्दी भाषा वार्तिक प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे शमगुणप्रदर्शनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अब श्रीसत्यसन्ध सुकुमार कोशलेश्वर कुमार के सत्यगुण का निरूपण किया जाता है। इस परम सिद्धान्तसार गुण का यह उत्तम प्रधान लक्षण है कि धर्मबीज हितकारी पवित्र गम्भीर माधु

---

1 कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीना हतः पञ्चभिरेव पञ्च । एकः प्रमादी स क न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च । मृग हाथी पतंग भ्रमर एवं मी अपने अपने एक एक विषय के सेवन से मारे जाते हैं तो जो लो अकेले पांचों विषयों का सेवन करेंगे वे क्यों न मरेंगे ।

र्यसहित जो सर्वदा एक सम वचन बोलना वही सत्य वचन है। ऐसी सत्यवाणी का इन जीवों से उच्चारण होना असम्भव है। धूर्त मूर्ख खल छली आदिकों से सपने में भी ऐसी नहीं कही जाती। जो इन अवगुणों से रहित हैं वे ही ऐसा कह सकते हैं। यों तो उक्त अवगुणों के बीज संक्षेप से जीवमात्र में रहते हैं पर केवल यथार्थ सत्यगुण सरकार ही में स्वाभाविक पाया जाता है और सत्यत्व में श्रीमुखवचन ही प्रमाण माने हैं। यथा महारानी कैकेयीजी से श्रीराजकुमारजी ने कहा कि हे अम्ब ? मैंने मिथ्यावचन कभी नहीं कहा है, न कहूँगा, निश्चय जानो। यह प्रसिद्धि श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के अवधकाण्ड में हैं।[1] श्रीरघुकुलावतंसजी सत्यवादियों में अग्रणी हैं। दया, सत्य, तप, दान ये चार चरण धर्म के हैं। ये चारों श्रीरघुनन्दनजी के आश्रय से मोद-विनोद पाते हैं पर सत्य गुण उनमें विशेष समझना चाहिए।

यदि कहिए कि श्रुति श्रीरघुनन्दनजी का परब्रह्मत्व प्रतिपादन करती है। इनमें धर्माचरण अप्रयोजन और व्यर्थ है ? तो उत्तर यह है कि तुम सत्य कहते हो, परन्तु श्रीरघुनन्दनजी तो अमित यज्ञादि धर्माचरण किया करते हैं वह केवल स्नेहियों के लिए मर्यादा संस्थापन के लिए और उपदेश के लिए ही है अपने लिए नहीं। जिन स्नेहियों ने प्रेम में मग्न हो श्रुतिस्मृत्युक्त कर्मों का त्याग किया है उनके दोषों को वे अपने सुकर्म द्वरा निवारणरूपी प्राश्चित्त कर देते है। ऐसे प्रणतपाल कृपाल करुणासिन्धु के जो मन वचनकाय से कपट छोड़ शरणागत न हुआ, उसके समान अधमाधम चण्डाल

---

1 तद् ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकांक्षितम्। करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते। श्रीरामभद्र श्रीकैकेयीजी से कहते हैं देवि ! महाराज की आज्ञा आप कहें मैं प्रतिज्ञा करता हूँ अवश्य उसका पालन करूंगा क्योंकि राम दो वार नहीं बोलते हैं।

और आत्मघ्न त्रिलोकी में कोई नहीं हैं। जो समस्त उपाधि छोड़कर शरणागत होते हैं उनके देव, पितृ, ऋषि ऋण अनायास ही दूर हो जाते हैं।

इस गुण के अनुसंधान से सत्य में प्रतीति होती है और जो श्रीरघुनन्दन जी के और उनके भक्तों को भक्ति-प्रपत्ति-प्रतिपादक प्रबल वाक्य वेद शास्त्रों में जहाँ तहाँ प्रकट है, उनको सत्य जानकर उनमें दृढ़ विश्वास होता है यही परम फल है।

सत्य वचन गम्भीर मृदु, धर्मबीज प्रदमोद।
श्रवन मनन करिये सदा, जुगलसुजस सबिनोद॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषावार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे सत्यगुणवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

अब श्रीक्षमासागर उजागरजी के क्षमागुण का निरूपण किया जाता है। क्षमापति श्रीकुमारजी की यही अनूठी क्षमा है कि अत्यन्त उग्र अपराधी जीव पर भी समस्त कोप निवृत्त करके उसे अङ्गीकार करना, और सब प्रकार समर्थ होने पर भी सह जाना क्षमा करना। यह सरकार की मनोमोहिनी क्षमा है। जीवमात्र में असंख्य असाध्य अपराध हैं जो सर्वदा बने रहते हैं। वे न तो सुकृत-समूह से क्षीण हो सकते हैं, न भोग से निवृत्त हो सकते हैं। वे केवल श्रीजानकीवल्लभजी की क्षमा से अनायास निवृत्त होने योग्य हैं, अन्य सभी उपाय व्यर्थ अनर्थ और श्रमदायक हैं।

क्षमा के अनुसन्धान के बिना चाहे जैसा पातकी शिरोमणि हो, शरणागत होने पर वह परम शुद्ध सन्त समान हो जाता है सन्देह नहीं। जो कभी कुछ कोप श्रीरघुबीरजी का शरणागत पर लक्षित होता है उसे प्रभु बीजवत् जानते हैं वह कार्यकारी नहीं होता। वह केवल भय देने के लिए ही होता है जिससे दास कुमार्ग में प्रवृत्त न होय। बिना क्षमा के कभी जीव का उद्धार नहीं इसलिए सदैव स्वामी से क्षमा प्रार्थना करते रहना चाहिए।

इस गुण के अनुसन्धान से संसृति का अभाव आपसे आप हो जाता है सन्देह नहीं। यही इसका विचित्रतर फल है।

क्षमा किये ते तरि गये, भये जे नीच अनेक।
तातें सकल उपाय तजि, गहौ क्षमा गुण टेक॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते श्रीरघुवरगुणदर्पणे हिन्दी भाषावार्तिक प्रबन्धे क्षमागुणप्रदर्शनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

अब परम दिव्य भव्य श्रीअवधेशकिशोरजी का निर्मल सौहार्द गुण जो अतीव सुखदाई है, निरूपण किया जाता है। सौहार्द का लक्षण यही है कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य उत्तम वर्ण और योग जप तप व्रत पूजा नेम वेद पाठ इत्यादि गुण की अपेक्षा बिना ही केवल शरणमात्र से प्रसन्न होकर आप दास को अपनाते हैं। श्रीरघुराई जी का सौहार्द सहज सुलभ है, जिसका निरूपण श्रीहनुमानजी तथा प्रहलादजी ने श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थों में भलीभाँति किया है। ❀

❀ श्रीमद्भागवत में श्रीहनुमान्जी कहते हैं कि हम वानर भालुओं के न तो सुन्दर जन्म है, न सुन्दरता, न वाणी, न विद्या, बुद्धि, हम लोगों की आकृति भी अच्छी नहीं है। किन्तु इन सब गुणों से रहित हम बनचारियों को श्रीलक्ष्मणकुमार के बड़े भ्राता श्रीराघवेन्द्र ने सखा बनाया यह शीलगुण उनका आश्चर्यजनक है। वास्तव में प्रभु की प्राप्ति में जाति विद्या आदि का महत्व नहीं है।

न जन्म नूनं महतो न सौभगम् न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनोकसश्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः॥

इसलिये देवता असुर वानर अथवा मनुष्य कोई भी हो उसे सब प्रकार से श्रीराघवेन्द्र का भजन करना चाहिये क्योंकि श्रीरामजी नर रूप में साक्षात् श्रीहरि ही हैं। तथा थोड़े से भजन को भी बहुत अधिक मानते हैं। जो ऐसे आश्रितवत्सल हैं कि जब स्वयं दिव्यधाम को पधारे तब समस्त उत्तर-कोसल वासियों को भी अपने साथ ही ले गये थे।

सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम्।

जनसुखदायक श्रीरघुनायकजी केवल स्नेहमात्र से रीझ जाते हैं। वह स्नेह बिना श्रद्धा के दुर्लभतर है। श्रद्धा से ही सर्वार्थलाभ होता है। पुरुष श्रद्धामय होता है श्रद्धा और ईश्वर में भेद नहीं है। श्रद्धा का अनूप स्वरूप आगे कहा जाता है:—

गुरु सज्जन और सच्छास्त्रों में दृढ़ विश्वास और उनके वाक्यों में परम प्रतीति को श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा का द्वितीय स्वरूप यह है कि करने योग्य पदार्थ में क्षरा-क्षरा साभिलाष शीघ्रता। तृतीय यह है कि कर्त्तव्य पदार्थ में अत्यन्त प्रिय बुद्धि करना। चतुर्थ यह है कि मेरी कार्य सिद्धि अनिष्ट निवाररा पूर्वक इसी से होगी इसमें सन्देह नहीं। पञ्चम रूप यह है कि मैं करोड़ों काम छोड़कर इसी में लगूँगा, इसी प्रकार श्रद्धा के रूप अनेक हैं। महात्माओं के पदपङ्कजपरागों के अभिषेक से अनूठी श्रद्धा प्राप्त होती है।

---

*भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत्कोसलान्दिवमिति। २

श्रीप्रह्लादजी कहते हैं कि देवता, दैत्य, मनुष्य, यक्ष अथवा गन्धर्व कोई भी क्यों न हो, जो भगवान् के चरण कमलों का सेवन करता है वह हमारे ही समान कल्याण का भाजन होता है।

देवोऽसुरो मनुष्यो वा यक्षो गन्धर्व एव च।
भजन् मुकुन्द चरणं स्वस्तिमान् स्याद् यथा वयम् ॥१॥

दैत्य बालकों ! भगवान् को प्रसन्न करने के लिए ब्राह्मण देवता या ऋषि होना सदाचार और विविध ज्ञानों से सम्पन्न होना तथा दान, तप, यज्ञ, शारीरिक और मानसिक शौच और बड़े बड़े व्रतों का अनुष्ठान पर्याप्त नहीं है। भगवान् केवल निष्काम प्रेम भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं और सब तो विडम्बना मात्र है।

नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वा सुरात्मजाः।
प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता ॥२॥
न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम् ॥३॥

इस गुण के अनुसन्धान से जीवमात्र की प्रभु प्राप्ति योग्यता सूचित की गई। जिससे हम सभी को निःसंशय परम आह्लाद होता है। इस सौहार्द्द गुण से हम सभी को अवश्य ही सरकार प्राप्त होंगे यही फल इस गुण के चिन्तन का है।

बरनाश्रम जप तप बिना, द्रवत जानकी कन्त।
केवल सरन निसोत लखि, श्रद्धा जनित अनन्त॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते भाषावार्तिक प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे सौहार्द्दगुणप्रदर्शनं नाम एकादशोऽध्यायः॥ ११॥

परमोदार श्रीमहाराज कुमार जी के मधुर और सजग सुभग 'सौशील्य गुण' का यही ललित रमणीय लक्षण है कि कैसा ही कोई दीन हीन मलीन खिन्न हो, दारिद्र्यदावानल से अतीव दग्ध हो मुग्ध हो वा गुणखान हो उससे भी सप्रेम छल छिद्र त्याग कर मिलना और उसे अंगीकार करना। इसी का नाम सुशीलता है। जो श्री राघवजी में यथार्थतः पाई जाती है औरों में तो नाममात्र के लिये है। यह श्रीभक्तिरसायन श्रीमद्रामायण में स्पष्ट है। देखिये विराध महा-कुरूप राक्षस जो परम विरोधी था उससे भी कृपाल श्री कोशलपाल-बालजी ने अपना ब्रह्मादि दुर्लभ मनभावन पावन कोमल अङ्ग आपही से स्पर्श कराया और उसे श्रीसुशीलनिकेतनजी ने सहज स्नेह विचार अपने हस्तकमल से भूमि में हर्ष समेत गाड़ा। श्रीगिद्धराज जटायु जी को भी इससे बढ़कर अपनाया और सुखखानजी ने अपने करकंजों से उनका रुधिर पोंछकर जनक के समान दाहकर्मादि करके सब प्रकार का सम्मान दिया। इसीं प्रकार असंख्य कोल भिल्ल शबरी आदिकों से अनूठी प्रीतिरीति की, और उन सबों को निज आस्वाद सुख दिया एक रसना से कहाँ तक कहा जाय, वह सुशीलता तो अमित शेष शारदादि भी कहते हुए संकोच करते हैं। श्रीजानकीवल्लभजी की

यह सुशीलता है कि स्नेहियों का आचरण निहार कर अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक बार-बार प्रशंसा करना। यह गाथा श्रीमद्रामायण में श्रीहनुमानजी आदि स्नेहियों के प्रसंग में विदित है।

इस गुण के अनुसन्धान से हम लोगों का संशय दूर हुआ। यह बात जो मन में आ जाती थी कि हम सरीखे अपावन और कुरूप को सरकार कैसे अपनावेंगे और स्पर्श करेंगे, वह भलीभाँति निवृत्त हुई। हृदय में यह धिक्कार भी बराबर एकतार उत्पन्न हुआ कि हाय ! ऐसे सौशील्यसागर के पदपंकज पराग से रहित हो हमने अब तक अमित कल्प व्यर्थ अनर्थ हेतु बिताये यह अत्यन्त अनुचित किया। अतः अब हम सब आस विलास छोड़ श्रीजानकी जीवन से स्नेह करेंगे इत्यादि स्नेहियोंका प्रत्यक्ष फल इस गुण के श्रवण मनन आदि से सिद्ध होता है।

हीन दीन अघपुंज ते, पीन खीन जड़ जीव।
ऐसेहु कहँ ऊरी करत, यह सौशील्य अतीव॥
श्रीसीतापति सम सुभग, सहज सील गुणखान।
युगलानन्यसरन कतहुँ, होत न मम हिय भान॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण विरचिते भाषावार्तिक प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे श्रीसौशील्यगुण प्रदर्शनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

अब श्रीजानकी जीवन के मधुर आस्वादमय वात्सल्यगुण का यथामति निरूपण किया जाता है। अतीव अनुपम वात्सल्यगुण का यही लक्षण विचक्षणगण निरूपण करते हैं कि आश्रित भक्तों के दोषों को ग्रहण करके उसका फल हर्षपूर्वक आप भोगना, यही जनरञ्जन वात्सल्यगुण है। अथवा उनके दोषों को निज दिव्यशक्ति से दूर कर देना। अथवा श्रीमहीपमणिनन्दनजी सचिक्कन तन मन वचन रुक्षतादि दूषणरहित आश्रित स्नेही में सरस और एक रसरूप से लगे रहना यही वात्सल्यरस है। चतुर्थ यह लक्षण है कि जैसे

गृहस्थ को ममता मोह छोह अद्रोह अकोह प्रीति प्रतीति तादात्म्य लक्षणरहित, विलक्षण और अनायास ही स्त्रीपुत्रादिकों में होती है उससे भी करोड़ों गुण बढ़कर श्रीजानकीप्राणवल्लभजी का स्नेह आश्रितों पर निरन्तर और अपूर्व विधि से रहा करता है। यह भी वात्सल्य गुण का विचित्र और स्वादमय स्वरूप है। वात्सल्यगुण की अवधि चितचोर श्री अवधेश किशोरजी हैं, औरों में तो यह कणमात्र कहीं पाया जाता है वह भी श्रीरघुवंशमणिजी की कृपा से।

अब वात्सल्यपद का अर्थ किया जाता है। वत्स नाम स्नेहगुण की स्थिरता का है। उसका जो आदान (ग्रहण) करे वह वत्सल श्री-रघुनन्दनजी हुये तिनका भाव वात्सल्य अर्थात् ललिताचरण है। जैसे नवनीत में मिश्री और दुग्ध में दधि परम स्वादप्रद होता है, वैसे ही आश्रितवत्सल सरकार श्रीमहाराज कुमार की वत्सलता और स्नेहियों का स्नेह निष्काम रूप से मिलने पर परस्पर के हृदयकमल में परम आस्वाद उत्पन्न करता है। इस कारण दोनों ओर से प्रीति चाहिये, एक ओर स्नेह की अधिकता नहीं होती तब तक वात्सल्य भी विशेष स्वाद नहीं देता, यह बात प्रसिद्ध है। प्रत्यक्ष भी लोक में पाया जाता है, जैसे बीजान्तर भी स्वादु है परन्तु बिना विस्तार के यथार्थ और मोदप्रद स्वाद नहीं होता। ऐसे ही वात्सल्यगुण में सब प्रकार के मोद भरे हुये हैं किन्तु बिना भक्ति व स्नेह के उनका प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है।

इस विषय में श्रीरघुनन्दनजी के वाक्य प्रमाण बहुत ठौर संहिता पुराणों में पाये जाते हैं यथा—हम निरन्तर निज स्वतन्त्रता छोड़ सर्वदा भक्तों के अधीन है। भक्त हमारे जीवन हैं और हम भक्तों के जीवन हैं। जैसे पातिव्रतधर्म सम्पन्न ललना अपने हाव भाव कटाक्ष और सेवा आदि से पति को वश में कर लेती है वैसे ही हमें रसिक भक्तों ने अपनी विचित्र प्रीति से वश में कर लिया

है। वे चारों प्रकार की मुक्तियों को तृण की नाईं जानते हैं। देने पर भी नहीं ग्रहण करते और रहस्य सेवारस में आसक्त रहते हैं। मेरे लिये इन्होंने सब प्रकार के शुभाशुभ सांसारिक अभिलाषाओं को त्याग दिया है। अपने शरीर में तनिक भी प्रीति नहीं रखते केवल मेरे अभिराम नाम और गुणरूपी सुधा को निरन्तर चखते रहते हैं। यों ही अनेक प्रकार से मुझ में ही मग्न रहते हैं उनके साथ अन्तराय निवारण पूर्वक रक्षा करते हुए मैं सदा फिरा करता हूँ। स्वप्न में भी उनका विस्मरण मेरे तन मन वचन से नहीं होता। इस प्रकार की सुधासानी सुखखानि वाणी श्रीजानकीजानि जी ने जनसुखसदन निजवदन से अनेक ठौर बखानी है। अतः इस कथन से दोनों ओर के अतिशय स्नेह का सूचक हुआ।

श्रीजानकीवल्लभजी के सेवक भक्त दो प्रकार के हैं एक मुग्ध, दूसरे विदग्ध। इनकी रीति अपनी अपनी भावना के अनुसार देखी जाती है। मुग्धों में मनहरण परिकराभरण श्रीयुगलललन जी का अत्यन्त स्नेह वात्सल्य रहा करता है किन्तु विदग्धों (प्रौढ़बुद्धियों) पर सरकार का वैसा छोह नहीं रहता क्योंकि उनको अपने बल बुद्धि का भी भरोसा रहता है। मुग्धों को तो केवल युगलसरकार ही उपाय-उपेय रहते हैं।

एक स्वभाव सरकार का और भी अत्यन्त विचित्र यह है कि पुराने अत्यन्त स्नेह पात्रों से भी अधिक पुनीत प्रीति नवीन स्नेहियों पर करते हैं। यह बात युद्धकाण्ड में प्रसिद्ध है, जो श्रीरघुकुलावतंस जी ने सुग्रीवजी के प्रति कही थी। जिस समय दशकण्ठ निज सभा-मण्डल में नृत्य गीतादि-उत्सव में तत्पर था और श्रीरघुनन्दनजी सेना सहित सुबेलनामा नगेन्द्र पर आसीन थे। उस समय श्रीकपिराज दशमौलि का उद्धतत्व और अशंकत्व देख न सहकर दुर्ग पर से कूद-कर उसके निकट गये और श्रीराघवेन्द्र-प्रताप सुनाकर उसके बल

पौरुष का भलीभाँति विध्वंस किया। फिर परम हर्ष सहित श्रीराजीवनयन जी के समीप चले आये। श्रीआश्रितवत्सलजी उठकर अंकमाल करके मधुर मनोहर अमृतमयी वाणी से बोले कि हे अकुण्ठ-प्रताप प्यारे सुकण्ठ ! राजा को ऐसा साहस नहीं करना चाहिये। अकेले शत्रु के समीप जाना और युद्ध करना अनुचित है। यदि तुम पर अन्यथा उपद्रव हो जाता तो मैं लक्ष्मणादिकों को और निज जीवन को लेकर क्या करता ? तात्पर्य यह कि जैसी दशा तुम्हारी होती; हमारी भी अवश्य ही वरन् कुछ विशेष ही होती। अतः तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं। यह सुनकर प्रभु का भाव विचार श्री कपिराज कृतकृत्य हो गये।

क्या ही स्नेह मुग्धों पर होता है, ! यह विचारने की बात है। प्राचीन प्राणप्रिय श्रीलक्ष्मणादिकों से भी अधिक प्रीति श्रीराघवजी उनमें करते हैं अतः मुग्धता विचित्र है। प्राचीन विदग्ध भक्त ब्रह्मादिक तथा मुनिवर्यगण ज्ञान सम्पन्न और परात्परैश्वर्य चिन्तन करने हारे हैं। विदग्धों का माधुर्य-रसास्वादन स्वल्प ही होता है किन्तु ज्ञानमय ऐश्वर्य चिन्तन अधिक होता है। परन्तु मुग्धों का निरंतर सकल वासनाछोड़ सुधबुध बिसारकर श्रीप्राणप्रियजी की एकरस अभिनव अङ्गमाधुरी का प्रतिक्षण पान करना ही अनुक्षण का कार्य रहता है।

सरकार की माधुर्यमयी लीला भी विदग्ध भक्तों की सभा में कुलवधू सी संकोचयुक्त होती है किन्तु मुग्ध भक्तों के निकट रम्भादि नायिका सी अत्यन्त हर्षयुक्त बिना संकोच के क्रीड़ा करती हैं। अतः जहाँ मुग्धों की अज्ञानता देखी जाती है वहाँ रमण करती है। श्रीजानकीविहारी भी मुग्धों में आप भी मुग्धतर होकर बिना संकोच निरन्तर बहारदार विहार करते हैं। अतएव स्नेही को वही चिन्तन करना चाहिये, जिसमें प्रियतम की अत्यन्त रुचि और

आनन्द होवे, पर जिसमें संकोच हो वह करना अयोग्य है। श्रीमहाराज रघुनन्दनजी अपना परात्पर परत्व सुनकर संकुचित होते हैं और माधुर्यरहस्य बार बार चाह के साथ सुनते हैं इससे माधुर्यरस ही विशेष ध्येय है। ऐश्वर्यचिन्तन केवल प्रथम बोध के लिये और साधनकोटि में है किन्तु माधुर्यरसास्वादन साध्य है। अयोध्यावासी नरनारीगण पूर्ण मुग्ध हैं जिससे उनके वचन भी मुग्धपन के पाये जाते हैं। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण अयोध्याकांड में लिखा है कि वहाँ के समस्त नारीनरगण सायं प्रातः देवताओं को पूजकर साभिलाष यही मनाते हैं कि श्रीरघुनन्दनजी निरामय मंगलमोदमय रहें और हम सब उन्हें नित्य देखते रहें। भुक्ति मुक्ति की चर्चा सपने में भी कहीं श्रीअवध में भूलकर भी कोई नहीं करता।

सम्बन्धानुरागी जितने हैं वे सब माधुर्य में मुग्ध हैं। जिससे अब भी यही उचित है कि सब भाँति से मुग्ध भक्तों की रीति प्रीति धारण करना चाहिये। विदग्धता में स्नेह की मधुरता, सरसता नहीं रहती। अतः सब प्रकार से श्रीजानकीवल्लभ जी में स्नेह-सम्बन्ध कर्तव्य है। जितने साधन हैं वे सब विरोधी हैं क्योंकि उनमें स्वतन्त्रता का अध्यास बना रहता है, पर तदीय होकर तदेकोपाय होना यह विचित्र रहस्य है। जब तक इसको अपने साधन का भरोसा रहता है तबतक प्राप्ति दुर्लभ रहती है, यह बात सत्य माननी चाहिये। जो होय सो सीतावर की कृपा और वत्सलता से होय, अपने साधन उपाय से कुछ नहीं होगा यही विश्वास सुखराशि-निवास है।

इस वात्सल्य गुण के अनुसन्धान से स्नेहियों को बहुत लाभ होता है। तो भी विशेष तो लाभ यह है कि ऐश्वर्य चिन्तन का त्याग और मुग्ध होकर माधुर्य रसास्वादन यही इसका अमल फल है और अत्यन्त अशंकता का लाभ भी होता है। इस गुणचिन्तामणि वात्सल्य गुण के सम्बन्ध से क्या क्या लाभ न होगा? किन्तु सभी करतलामलक होगा इसमें सन्देह नहीं।

विशद विभववर देश बर, वत्सलगुण सियलाल ।
दोष सोष कर पोषप्रद, युगलानन्य असाल ॥१३॥

इति हिन्दी भाषावार्तिक प्रबन्धे श्रीरघुबरगुणदर्पणे श्रीयुगलानन्यशरण विरचिते वात्सल्यगुणवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्याय: ॥१३॥

अब सर्वेश शिरमौर चितचोर श्रीमहाराजकिशोर का सर्वोत्तमोत्तम परमध्येय ज्ञेय पेय श्रीसौलभ्यगुण का निरूपण किया जाता है। अधिकारी अनधिकारी सकल जीवों को अनायास प्राप्त होना ही सौलभ्यगुण का स्वरूपात्मक लक्षण है, यही सौलभ्यगुण की प्रशस्तता है। सौलभ्यगुण को स्पष्ट करने वाली परम प्यारी एक पुराण की गाथा प्रमाणरूपा और श्रोतव्य है। यद्यपि श्रीमान् नृपनन्दनजी की सुलभता सब ग्रन्थों में साज सहित गाज रही है तथापि इस गाथा में परत्व और सौलभ्य दोनों स्पष्ट झलकते हैं। अतएव लिखी जाती है सारग्राही सज्जनगण विचार लेंगे।

एक समय सर्व शक्तिपदवन्दिता अनिन्दिता सकलगुणमण्डिता पराशक्तिने अपने अंशभूत माया में लीन समस्त जीवों को भोगमोक्ष साधन रहित और दु:खौघ सहित निहार कर परम दया सम्पन्ना देवी जी ने सर्वेश्वर श्रीकौशल्यानन्दवर्धन मनोजमदमर्दन पुरुषोत्तमजी से अतीव प्रणय सहित विनय की, कि हे राजराजेश्वर नित्यविभूतिनायक श्रीरघुनायकजी आप सब प्रकार से कृपादि दिव्य गुण के खान हैं अत: सरकार के लिए परम उचित है कि विचित्र सौलभ्यगुण को प्रकाश कीजिए और उसी गुण के अनुसार पामरों को भी निज पदनिवास दीजिये।

ऐसी सुधासानी वाणी सुन गुन कर सर्वेश्वर श्रीरघुकुलावतंसजी ने अपने शक्ति गुणांश द्वारा वासुदेव प्रद्युम्न, अनिरुद्ध संकर्षण रूप चतुर्व्यूह प्रकट किये। ये चारों उदार संसार के मुख्य कारण है।

इन्हीं के अंश से अशेष ब्रह्मा, विष्णु महेश, उत्पन्न होते और लीन भी हो जाते हैं। ऐसे विचित्र अवतार सुलभता के लिए प्रकट हुए तो भी देवी के हृदयपंकज में प्रसन्नता न हुई। जिससे फिर प्रश्न और प्रार्थना की कि हे देव देवेश करुणार्णवेश जी आप सबके लिए सुलभ न हुये क्योंकि ये अपने अपने लोकों में व्यूहस्थित रहते और देवरूप हैं इससे सबके लिये सुलभता असम्भव है।

यह सुन श्रीपूजितसर्वेशजीने निज विभवांश से अन्तर्यामित्व प्रकट किया और सबके हृदयान्तः कोष में निवास दिया। तब श्रीप्रणतरक्षणातत्परा सरकारी शक्ति ने पुनः प्रार्थना की कि हे निज-जनार्तिहरण शरणागतवत्सलजी ! यह रूप तो और भी दुर्लभ हुआ क्योंकि यह अगोचर है और केवल योगीश्वरों के दृग् विषय होने योग्य है अतः अब सुलभ हूजिये। तब सुलभतार्थ श्रीराघवेन्द्रकुमार जीने श्रीसम्पन्न अष्टभुजादिरूप निजअंश अंशांश से प्रकट किया। तो भी महामाया प्रसन्न न हुईं क्योंकि यह रूप भी दुर्लभता सहित उपासकों से लभ्य है सबों से नहीं। अतः इनमें भी सुलभता नहीं पाई जाती। अतः उक्त देवी ने फिर प्रार्थना की कि हे नतपाल कृपालजी सुलभ हूजिये। तब श्रीरघुनन्दनजी ने जीवोद्धार हेतु निज कलांश से मत्स्यादि अवतार प्रकट किये। तब भी देवी हर्षवती नहीं हुईं क्योंकि उक्त अवतार एक तो विजातीय, दूसरे अल्पकाल स्थायी, तीसरे इनकी कीर्ति अत्यन्त लघु, अतः इन में सुलभता नहीं देखी गई।

सौलभ्यगुण उसी रूप में हो सकता है जिसमें ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों विचित्र हों और जिसका सुयश अनन्त हो वही सबों को सुलभ होता दूसरा नहीं। फिर उक्त देवी के प्रार्थनानुसार सर्वेश-पूजितचरण मनहरणजीने सर्वनीच जीवोद्धारहेतु निज करुणांश से अर्चावतार स्वयं व्यक्तादिभेद से प्रकट किये तो भी देवी प्रसन्न न हुई, क्योंकि अर्चावतार भी सबों के सुलभ नही हैं। वे केवल अधिकारी

ही मात्र को सुलभ हैं क्योंकि सब तो उनका पूजन नही कर सकते । प्रकट देख लीजिए । इस पर भी जब सुरसेवी देवी को प्रसन्नता न हुई तब श्रीपरात्परेश्वर जी ने अतीव मधुर वचनों से पूछा कि हे प्रणतजनरञ्जनि ! किस प्रकार से तुमको हर्ष होगा ? वह सङ्कोच छोड़कर कहो, मैं सभी पूरा करूँगा संशय नहीं ।

इस प्रकार की रहस्यरससरसानी वाणी सुनकर परमानन्द भरी महादेवी प्रार्थनामय वचन बोलीं-हे देवाधिदेववन्दितपदपद्म-पराग ! इस पूर्वोक्त सौलभ्यगुण के प्रकाशनार्थ आपने जो नाना-प्रकार के रूप प्रकट किये वे सब विजातीय जीवों के हैं । जीवों को सजातीय बिना यथार्थ स्नेह नहीं होता और स्नेह के बिना सुलभता नहीं दीखती । देवतादि विग्रहों में प्रीतिकी विचित्रता नही पाई जाती और जो मनुष्याकार अवतार भी हुये उन सबों में भी नित्य मनुष्यत्व नही । उनकी कीर्ति भी अतीव विचित्र विशाल अकलङ्क वा अशङ्क नहीं । अतः आप यदि श्रीअवधबिहारी नित्यमनोहर मनुजाकार द्विभुज परात्पर सरकार प्रकृति मण्डलमें अप्राकृत लीलायुक्त परिकर सहित प्रकट हों तो अवश्य ही सौलभ्यगुण भलीभाँति झलकें ।

यदि कोई कहे कि पहले देवाकार थे अब भक्तों के लिए मनुष्याकार हुए हैं तो यह कहना अत्यन्त असम्भव और बिना समझ के हैं क्योंकि जिसने रसिकपरिकरों के साथ नित्य किशोर श्रीजानकी-वल्लभजीके परात्परत्व-विषयक सत्संग नहीं किया वह बिचारा क्या जान सके ? यह रहस्य तो देवेशों को भी दुर्लभ है । यदि दशकण्ठ का मरण कपट कल्पित मनुष्य के हाथ से होना बदा होता तो इन्द्रादि देवताओं में से कोई एक मनुष्य होकर उसका नाश कर डालता, पर ऐसा नहीं हुआ । इसी से स्पष्ट होता है नित्य मानवाकृति श्रीपरा-त्परेश्वर के ही करकञ्जोंसे उसका वध हुआ विष्णु आदि तो ईश्वर हैं किन्तु नित्य मनुजाकार श्रीराघव के सिवा दूसरा कोई नहीं है ।

श्रीमद्वाल्मीकीय युद्धकाण्ड में स्वयं सरकार ने देवताओं की सभा में श्री ब्रह्माजी के प्रति स्वमुख कमल से अमल वचन कहा कि कि मैं श्री महाराज दशरथजीका आत्मज हूँ। राम मेरा अभिराम नाम है। मैं मनुष्य हूँ अर्थात नित्य मानवाकार हूँ।[1]

उक्त उक्ति में श्रीमहाराज पद कहने से सरकार ने नित्य परिवार सम्बन्ध सूचित कराया। राम इस नाम द्वारा यही मेरा नाम अनादि है यह सूचित किया और सरकार महाराजकुमार ने मनुष्य पद से नित्य द्विभुज परापरत्व सूचित कराया यह बात मनकी अमानता को छोड़कर विचारने योग्य है। यदि कोई मतिमन्द कहे कि 'यहाँ निज ऐश्वर्य गोपन (छिपाने) के लिए अपने को मनुष्य कहा है सो सत्य है परन्तु मनुष्याकारत्व और श्रीमहाराज के सुवन (दशरथनन्दन) तथा श्री राम नाम इन तीनोंका गोपन तो नहीं किया। यदि कहो कि व्यवहार देश में यह कहा है तो व्यवहार श्री रघुनन्दनजीका सत्य है अथवा असत्य ? यदि असत्य कहोगे तो सर्व-श्रुति-स्मृति सम्मत श्रीरघुवीरजीका सत्यत्व व्यर्थ हो जायगा। यदि यह व्यर्थ हुआ तो सभी वेद मिथ्या हुए सत्य है तो सरकार में यह उक्ति परम यथार्थ रमणीय और सकल-शोक-शमन-योग्य है मेरा संवाद आस्तिकों के साथ है, नास्तिकों और कुतर्कवादियों से क्या प्रयोजन ?

अब प्रसङ्ग सुनिये। ऐसे सर्वोपरि विराजमान नित्य द्विभुजाकार रसमय मधुर मनोहर विग्रह सुखसन्दोह रघुकुलावतंस ही परात्पर पदार्थ स्नेहियों को सौलभ्य और निजसुधासार अभिनव अङ्गमाधुरी दिखाने के लिए समस्तदिव्य अतिदिव्य परिकरनिकर के साथ

---

1 आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् ।
योऽहं यस्य यतश्चाहं भगवांस्तद् ब्रवीतु मे। वा० ६।१२०।१२

भरतखण्ड मध्यस्थ मन्वादि पालित पूजित स्पष्ट प्रकाश युक्त अवध में पूर्वोक्त महादेवी शक्ति के विनयानुसार प्रादुर्भूत हुए।

यहाँ यह संशय नहीं करना चाहिये कि श्री अवध जो परात्पर वह ऊपर है, यह लीला अवध है। इसमें तात्पर्य बहुत गोप्य है जो अनन्य उपासकों को गम्य है। श्री अयोध्या जी तो एक ही हैं और सदा भरतखण्ड में स्थित है। जिस समय पृथ्वी की रचना भी न हुई थी, उस समय भी यह एक रस नित्य अखण्ड सच्चिदानन्द रूप से स्थित थीं और महाप्रलय में भी ऐसे ही स्थित रहेंगी, विपरीत कदापि नहीं। यह उस समय अपना अनूप स्वरूप दिखाती हैं जिस समय देह से अत्यन्त निराशा और परम मधुर प्रीति प्रकाश होती है उसी समय धाम का एक रस स्वरूप झलकता है। यहाँ ही नित्य अवध बिहारी श्री जानकीवल्लभजी परिकर सहित रहा करते हैं। जब उनकी व उनके परिकरों की इच्छा होती है तब प्रकट हो करके असंख्य पामर जीवों को तारते हैं। इस रहस्य का सम्पूर्ण भेद भली-भाँति लिखते नहीं बनता सत्संग से जाना जायगा। श्रीरघुनन्दन जी ने यहाँ प्रादुर्भूत होकर सुकृतपुञ्जजनक विचित्र और पवित्र माधुर्यमय परत्व प्रकट किया।

मुनिवर्य श्रीवाल्मीकिजी ने शतकोटि रामायण एक से एक अद्भुत रचे। श्रीशङ्करजी, श्री मारुतनन्दनजी तथा असंख्य मुनियों ने रामायणात्मक करोड़ों नाटक रचे। इसी प्रकार १८ पद्म कपि-यूथपतियों ने श्रीमद्रामायण विस्तार सहित दो दो एक एक रचे थे। विचारना चाहिये कि ये कितने चरित्र हुये। दूसरों के तो दश पाँच लाख भी निसोत चरित्र मिलना दुर्लभ है। मनभावन जी के चरित्र ऐसे पवित्र हैं कि उनके एक एक चरित्र ब्रह्महत्यादि महापातकों के भी नाशक हैं।[1] ऐसा चरित्र सरकार ने जीवों के मोक्ष और

---

1 चरितं रघुनाथस्य शतकोटि प्रविस्तरम्। एकैकमक्षरं पुंसां महापातक नाशनम्॥

भक्ति रहस्य को सिद्ध करने के लिए भूमण्डल में स्थापित किया कि जिसे सुन गुनकर सांसारिक लोग पावन होंगे । आपने भी प्रकट होकर बहुत वर्षों तक विनोद दिखाया स्नेहियों के नयन वचन मन में अपने रूप की रसानन्दवर्द्धिनी माधुरी बरसायी और श्रीअवध-धाम के दर्शन का महत्व भलीभाँति प्रकटकर ऐसा दिखाया कि जो क्षण भर भी निहारे उसको यमगण नहीं स्पर्श करें और श्री परम-धाम को प्राप्त होवे तथा जो कोई उसका दर्शन करे वह अवश्य कृतार्थ होवें । इस प्रकार की मर्यादा को श्रीकौशल्यानन्दवर्धन जी ने स्थापित किया, कहाँ तक कही जाय । सरकार ने इसी प्रकार से सुलभ होकर अमित जीवों का निस्तार किया । फिर तिरोहित होकर निज नित्य बिहार में तत्पर हुए, प्रकट समय तो श्री सरकार के द्वारा थोड़े ही जीवों का निस्तार हुआ किन्तु तिरोभाव के पश्चात् तो असंख्य जीवों का उद्धार हुआ ।

कीर्ति धाम नाम अभिराम द्वारा सौलभ्यगुण का प्रतिपादन करने वाली इस कथा को जो कोई तीनों समय नियम सहित पाठ करेगा वह निस्सन्देह श्रीजानकी जीवन को प्राप्त होगा । इस दिव्य सौलभ्यगुण के अनुसंधान से परम सुलभता के लाभरूप अमल फल का लाभ हम सबों को अनायास ही हुआ और श्रीरघुबीर जी अतीव दुष्प्राप्य हैं यह शंका निवृत्त हुई । जिनको निज साधन का अभिमान है उनको तो वह दुष्प्राप्य तथा अति दुर्लभतर हैं किन्तु हमारे सदृश तदेकोपाय वालों को तो सदनसम परम सुलभ हैं ।

❀ दोहा ❀

श्रीसीतापति सहज सुचि, गुनसौलभ्य अनूप ।
युगलानन्य सरन सुखद, मेटत भयभवकूप ॥

इति श्रीयुगलानन्य शरण विरचिते हिन्दी भाषा वार्तिक प्रबन्धे श्रीरघुबरगुणदर्पणे सौलभ्यगुण प्रदर्शनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

अब सर्वेश्वर महाराजकुमार श्रीजानकीवल्लभजी की सर्वज्ञता का निरूपण किया जाता है। श्रीराघवेन्द्रकिशोर की सकल वस्तु मात्र के नाम गुण स्वरूप का यथार्थ प्रत्यक्ष और सर्वकाल में बिना भ्रमादि के अनायास ही जानना सर्वज्ञता है। (यः सर्वज्ञः स सर्ववित् श्रुति कहती है कि प्रभु समस्त पदार्थों को भलीभाँति जानते हैं)। श्रीरघुनन्दनजी का सर्वज्ञता गुण स्वाभाविक सरस है, अन्य ईशों को तो श्रीसीतावर भजन लब्ध कृपा से प्राप्त होता है। सब पदार्थों का बोध किसी को शास्त्रों द्वारा होता है, किसी को प्रत्यक्ष नेत्रादि से दर्शन श्रवण द्वारा होता है। सर्वज्ञता नित्य मुक्तों और शिवादिकों में पाई जाती है परन्तु वे ध्यान करके जानते हैं। स्वाभाविक नहीं जानते यह सर्वत्र प्रसिद्ध है। मानस में सुस्पष्ट है कि सतीजी के कपट को श्रीशिवजी ध्यान करके जान पाये।

तब संकर देखेउ धरि ध्याना।
सती जो कीन्ह चरित सब जाना।।

किन्तु प्रभु तो बिना ध्यान के ही जान गये—

सती कपट जानेउ सुरस्वामी।
सब दरसी सब अंतर जामी।।

अतः परम परेशत्व श्रीजानकीजानि में ही पाया जाता है औरों में नहीं। लीलाप्रकरणों में भी बहुत ठौर सर्वज्ञतागुण श्रीसीताकान्तजी में पाया जाता है, नित्यलीला में तो स्पष्ट ही है।

वेद में एक से एक का ज्ञान और आनन्द अधिक कहा गया है परन्तु सबों की सीमा श्रीजानकीवल्लभजी में ही निरूपण किया है क्योंकि

श्रीरघुनन्दनजी का तत्व विचित्र ही है। अब आनन्द और ज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि कही जाती है। मनुष्य जाति के आनन्द और ज्ञान पशु से सौ गुना अधिक होते हैं, यक्ष और राक्षसों को मनुष्य से सौ गुना अधिक हैं, उनसे अधिक दैत्य दानवों के होते हैं, उनसे अधिक योगियों के, योगियों से अधिक मानव गन्धर्वों के, मानव-गन्धर्वों से अधिक देवगन्धर्वों के, उनसे अधिक पितृगण के, उनसे अधिक अजानज देवों के, उनसे अधिक नित्य देवों के, उनसे अधिक मरीच्यादि ऋषिवर्यों के, उनसे अधिक रुद्र के और रुद्र से सौ गुना अधिक ज्ञान और आनन्द ब्रह्माजी के होते हैं। ब्रह्माजी से शतगुण अर्थात् असंख्य गुण ज्ञानानन्द युक्त श्रीरघुवरपदपङ्कजलुब्ध मधुप अनन्य धर्मनिष्ठ वरिष्ठ उपासक हैं, उनके स्वामी श्री जानकी बिहारी जी हैं।[1] उनके ज्ञान और आनन्द का क्या कहना है कोई उपमा नहीं जो दी जाय, श्रीराघवेन्द्र जी अनूप हैं।

---

1 सैषाऽऽनन्दस्य मीमांसा भवति। युवा स्यात्साधुयुवाध्यायकः। आशिषो द्रढिष्ठो वलिष्ठः। तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात्। स एको मानुष आनन्दः। ते ये शतं मानुषा आनन्दाः स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दाः स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः' स एकः पितृणाचिरलोकलोकानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं पितृणांचिरलोकलोकानामानन्दाः स एक साजानजानां देवानामानन्दाः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।...............

ते ये शतं देवानामानन्दाः। स एकइन्द्रस्यानन्दः। ते ये शतमिन्द्रस्यानन्दाः। स एको बृहस्पतेरानन्दः। ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः स एकः प्रजापतेरानन्दः। ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः। स एको ब्रह्मण आनन्दः। (तैंत्तिरीयोपनिषद ब्रह्मानन्द वल्ली)।

जो कोई श्रीरघुकुलावतंसजी से आगे पर पदार्थ का निरूपण करता है अथवा रुचि सहित श्रवण करता है, वह नास्तिकाग्रगण्य, पाखण्डि शिरोमुकुट अधम नीच, पामर मनुजाद सिरमौर और मति-बौर है। उसका मुख देखना महापाप जनक है, यह बात संहिता पुराणादिकों में विदित है छिपी नहीं। यदि शक्ति होय तो ऐसे अधम की जीभ उखाड़ डाले अथवा वहाँ से हाहाकार पूर्वक शोक-सहित हट जाय। श्रीजानकीवल्लभजी का परत्व परात्परतम है इसके साथ किसी का मिलान करना वा अभेद कहना महाघोर अपराध है जैसे खद्योत को उदित मार्तण्डसम कहना प्रत्यवाय (अपराध) है। जो कुतर्कवादी अपनी अज्ञता और आसुरमत सम्बन्ध से श्रीरामपरत्व में संशय करते हैं वे ऐसे हैं कि जैसे प्रबल चक्रवर्ती का डंका उदण्ड रूप से गरजकर बजे और कोई बधिर अथवा सात कोठरी के भीतर बैठा मनुष्य नहीं सुन सके और कहे कि 'कहाँ डंका बजा है' और दूसरे समझावें कि 'तुम भीतर रहने के कारण नहीं सुन सके अब बाहर आने पर उसका शब्द अवश्य सुन सकोगे।' इसी प्रकार से श्रीमहा-राजकुमार सरकार का प्रबल परत्व श्रुति स्मृति और लोक में अशंक रूप से गरज रहा है परन्तु जो अविद्या कोठरी के अन्तंगत हैं और ज्ञानरूप इन्द्रिय से हीन हैं उनको नहीं जान पड़ता।

वह जब श्रीरामोपासकों के समीप आर्त और जिज्ञासु होकर जाता है तब जान पड़ता है कि श्री दशरथराजकिशोरजी ऐसे विचित्र हैं अन्यथा पच-पच कर मर जाता है परन्तु श्रीकोशलेशसूनु की रंगदारी दुर्लभ होती है। प्रभु प्रतिकूल क्रियाओं का त्याग और श्रीरघुनन्दनानुकूल कर्म का सप्रेम संकल्प-उत्थापन स्नेही जनों का स्वाभाविक कार्य है। श्रीरघुनन्दनजी सर्वज्ञ हैं तो हम कैसे अन्य रहस्य का संकल्प उठावें और करें, ऐसा संकोच करते हुए केवल

प्रिया प्रीतम विषयक संकल्प ही उठाना चाहिए दूसरा नहीं । इस सर्वज्ञ गुण के अनुसन्धान से इसी विचित्र फल का लाभ हुआ ।

जानत जीवन जान सबै, लघुदीरघ गुन व्रात ।
तातें तजिये विषय मति, गति गुन गुनि हिय तात ।।

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दी भाषावार्तिक प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे सर्वज्ञ गुण वर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।। १५ ।।

—: ❀ ❀ :—

अब भक्ति-मुक्ति प्रदायनी श्रीपरात्परतम परम माधुर्यैश्वर्यसदन जी की पराशक्ति का निरूपण अपनी भक्ति के अनुसार संक्षेप से किया जाता है । श्रीपरेश्वर जी के शक्तिगुण का यही अनूठा विशद विलक्षण लक्षण है कि वह शक्ति अघटन-घटना सामर्थ्यवती है । जो किसी से होने योग्य नहीं वह सहज में दरशा देना और जो पदार्थ अत्यन्त अचल है उसको तृण के समान अनायास ही निवारणकर देना यही शक्ति का गुण है, श्रीजानकी प्रीतिपरवश जी में यह अति अद्भुत और अनिवार्य शक्ति है । सभी गुण शक्तिगुण के आश्रय से ही गरजते हैं, अन्यथा वे कार्य करने में समर्थ नहीं हो सकते । रसिक-चित्तचन्दन जगवन्दन दृगफन्दन श्रीमहाराजनन्दन जी के आगे-आगे यही गुणगणजटी अतीव अटपटी, अघटन-घटना धटी शक्तिरूपानटी असंख्य ब्रह्माण्डमयी नयी-नयी अनेक कौतुक रचना निजलाजप्रणय पूर्वक दिखाती है, रिझाती है । श्रीकोशलेशकुमार जी की कमनीय कीर्ति गाती है । अपने नृत्यकारी भाव से सब ईश अनीश मुनीशों को नचाती है और असंख्य कल्पों से नित्य नवीन नाट्य कौतूहल रचना करती है परन्तु कभी आलस्य अथवा प्रमाद विषाद नहीं पाती ।

शक्तिगुण एक नित्य एकरस अखण्ड अपार पारावार सागर है। उसी शक्ति-सिन्धु में ब्रह्मा, विष्णु, महेश नारायणादि समस्त ईश मत्स्यसम गोता खाते उछलते और लीन होते हैं। जहाँ इनकी यह गति है वहां अन्य रङ्क जीवों की कौन गिनती है। सरकार श्रीमहा-राजकुमार जी की यह भ्रू विलासी सम्भाविनी शक्तिरूपा किङ्करी सदैव आज्ञावर्तिनी हो हाथ जोड़े हाजिर रहती है। श्रीरघुवीर धीर जी आप भी इसकी करतूति विभूति देखकर आश्चर्य चकित होते हैं। इसकी चर्चा में आनन्द आता है। इसके समान जीवों के कठिन क्लेश काटने में कोई जप, तप, ज्ञान, वैराग्य, योग आदि नही समर्थ होता यह आग्रह छोड़ दृढ़कर जानों। केवल श्री राघवेशवल्लभ जी की शक्ति द्वारा ही निवृति होती है, अन्यथा अविद्यामय रोग शोक कोटि-कल्प तक दूर नहीं हो सकेगा। इससे सब प्रकार से यही उचित है कि जिस परात्परेश्वर की ऐसी शक्ति है उसकी शरण में छल छिद्र छोड़कर आ जावे।

ऐसे अद्भुत शक्तिमान के अनूप स्वरूप को जानते रहने पर भी जो निजमोदार्थ अन्यत्र चित्त लगाता है वह अत्यन्त जड़ शिरो-मणि है और उस नीच दुर्मति को बार-बार धिक्कार है। वे अपने धाम में ही कामधेनु को छोड़ दूध के लिए आकको दुहते है। जिसमें केवल हानि ही हाथ आती है और वे श्रीसरकार के शरणागत नहीं होते कि जिससे दुःखावसान हो। उनके पास यदि कोई सद्गुरु भी भाग्यवश प्राप्त हों तो निज अज्ञता के कारण वे उनके वचन पर विश्वास नहीं करते। कहाँ तक कहा जाय, इतने में ही समझ लीजिये कि बिना श्रीसीताकान्तजी के शरण आये किसी से अभयता नहीं प्राप्त होगी, चाहे कितना ही उपाय कीजिये। अतः सकल शक्ति-सिरताज स्नेह सुलभ श्रीजानकीवल्लभजी के पदपङ्कजों में मन वचन मतिगति को सभी ओर से फेर कर अवश्य और शीघ्र ही लीन करना चाहिये।

उक्त श्रीशक्तिगुण के अनुसंधान से प्राप्त फल पहला यह है कि मैं किस प्रकार इस प्रकृति मण्डल को छोड़ नित्यपरिकर में सम्मिलित होऊँगा। यह चित्त का संशय शक्तिगुण की सबलता विचारकर अनायास ही निवृत्त हो गया। दूसरा यह कि श्रीजानकी वल्लभजीके गुणों के निरन्तर अध्यास अभ्यास श्रवण मनन करते-करते थोड़े दिनों में परात्परका अतीव मधुर स्नेह हृदय में आविर्भूत हो जाने में तिलमात्र भी सन्देह नहीं रहा। सब पदार्थों से विचित्र ही गुणों के अनुसन्धान का प्रताप होता है। अन्य साधनों में अनेक अन्तराय और अमित जन्मान्तर के बाद सिद्धि लाभ होता है इसमें तनिक सन्देह नहीं। अतः श्री सद्गुरु से गुणों का यथार्थ स्वरूप जानकर छल छोड़ उनमें रति करनी चाहिये और आचार्यके वचनामृत में प्रीति प्रतीति पूर्णरूप से चाहिये। गुणों के विचार से समस्त सिद्धियाँ करतलामलकवत् हो जाती हैं इसमें और कोई रहस्य नहीं है।

श्रीसीताबर तीव्रतर शक्ति सहज परचंड।
युगलानन्यशरण करन, हरन विषय भ्रमखंड॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण-विरचिते हिन्दी भाषावार्तिक प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे शक्तिगुणप्रदर्शनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अब कृतज्ञेश्वर श्रीरघुकुलावतंसजी के प्रशस्य कृतज्ञता गुण का निरूपण स्वमति अनुरूप किया जाता है। अपने स्नेहियों के कृत अर्थात् सुकृत को विशेष रूप से जानकर उनको अङ्गीकार करना यही कृतज्ञता गुण का लक्षण है। ऐसी कृतज्ञता केवल श्रीकौशलेन्द्र कुमार में स्पष्ट रूप से झलकती है औरों में तो कहीं कणमात्र श्रीराघवप्रसाद से ही प्राप्त पायी जाती है। सुखमापन श्रीमद्रामायण में यह गुण शवरी, जटायु, कोल, भिल्ल, द्वारा भलीभाँति प्रसिद्ध है। सर्वगुण रूपी क्षीर में भी कृतज्ञता गुण सुधासम मधुर है। कृत-

ज्ञता बिना सर्वज्ञता में स्वाद नहीं। केवल सरकार की कृतज्ञता से जीवमात्र का उद्धार होता है अन्यथा महाकल्पान्त में भी उद्धार दुष्कर है। यह विचारने की बात है कि जितना कृत सुकृत सत्ययुग वालों से होता था उतना त्रेता में नहीं, त्रेता में जितना हुआ करता था उतना द्वापर में नहीं और द्वापर सा सुकृत कलिमें नहीं होता। इसी प्रकार जो कृत-सुकृत ब्रह्मादिकों से होता है वह महामुनियों से नहीं। परन्तु श्रीजानकीबिहारीजी को छोटे बड़े वे सर्व 'सुकृत' ज्ञात होते रहते हैं। इसमें केवल सरकार का कृतज्ञता गुण ही कारण है दूसरा नहीं। श्रीरघुनन्दनजी अपनी कृपालुता और कृतज्ञता विचार कर बड़ों की अपेक्षा लघुजनों पर अधिक स्नेह करते हैं। सत्ययुगादि में जो पद लाखों वर्ष तपस्या करने से भी दुष्प्राप्य था वह अब अल्पकाल में ही कृपालुजी अनायास देते हैं और 'सकृत्' एक बार भी जो शरण में आवे उनके तिलभर वा नाम मात्र के गुण को भी सहस्र सुमेरुसम गुरु जानकर श्रीराजीवनयनजी परम पद देते हैं।

यदि सरकार में कृतज्ञता गुण न होता तो कलियुग के जीव स्वप्न में भी कृतार्थ न होते। दास के असंख्य अवगुणों को भी सरकार नहीं स्मरण करते, ऐसा अद्भुत स्वभाव कहाँ किसी में पाया जाता है। श्रीरघुनाथजी केवल पत्र, पुष्प, नीर, वा मधुर वचन से ही परम प्रसन्न हो जाते हैं अपने आपको भी दे डालते हैं।[1]

अब और कहाँ तक कहा जाय। चूक इसी ओर की सब प्रकार से है उधर की तो अनिर्वचनीय विचित्र गति है। जब तक मनुष्य को अपने पुरुषार्थ का भान निवृत्त न होगा तब तक कृतज्ञता का स्मरण दुर्लभ है और कृतज्ञता स्मरण के बिना सरकार की प्राप्ति दुर्लभ है। अतएव श्रीरघुवर्य विभूषण की कृतज्ञता का मनन सभी भांति करना

---

1 तुलसीदल मात्रेण जलस्य चुल्लुकेन च।
विक्रीणीते स्वमात्मानम् भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः ॥

चाहिये। तथा मोह छोड़कर अपनी कृतघ्नता का भी स्मरण करना चाहिये। इस वरिष्ठ गुण के अनुसंधान से हम सबों को यह लाभ हुआ कि यह जो सन्देह था कि हमारे सरीखे कुसेवक पर सरकार कैसे रीझेंगे ? इस उक्त कृतज्ञता को विचारकर तुरन्त ही निवृत्त हुआ और प्राप्य की प्राप्ति में निर्भयता प्राप्त हुई।

तिल तें लघुगुन मेरु सम गहत कृतज्ञ कृपाल।
युगलानन्य निसंक रहु हर सायत सुख हाल॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषा वार्तिक प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे कृतज्ञतागुण प्रदर्शनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अब गम्भीर धीर श्रीरघुबीरजी के परम गम्भीर पीरहारी गम्भीरगुण का निरूपण किया जाता है। श्रीजानकी वल्लभजी की यही गम्भीरताई सुखदाई है कि जो कार्य छोटा अथवा बड़ा हो उसके किये जाने के पहले कोई नहीं जान सके यहाँ तक कि संगी साथी भी नहीं जानने पावें। पीछे सिद्ध हो जाने पर उसे सब कोई जाने यही गम्भीरता कहलाती है। श्रीमहाराज किशोर के ऐश्वर्य, माधुर्य, प्रताप आदि सभीगुण गम्भीर हैं।श्रीमद्वाल्मीकि आदि महामुनिवर्योंने श्रीमहाराजकुमारजी की गम्भीरता निज निज संहिताओं में भलीभाँति वर्णन की है परन्तु यह थाह नहीं पायी कि आपमें कितनी गम्भीरता है। सरकार की गम्भीरता करोड़ों पातालों से भी अधिक अथाह है। ऐसे गम्भीर धीर श्रीरघुवीरजी हैं कि श्रुतियाँ भी वर्णन करते-करते नेति नेति पद से थकना जाहिर करती हैं। रसिकचित्तचन्दन श्रीरघुनन्दनजी यदि कभी किसी पर नाराज भी हुए और वह पुरुष अत्यन्त भय के साथ सम्मुख आया तो श्रीमहाराजकुमारजी अतीव प्रिय मधुर वचन और मन्द मुसकान सहित मनोहर बोलकर उसका चित्त प्रसन्न कर देते हैं जिससे क्रोध छिप जाता है। जान नहीं पड़ता कि वह नाराजगी कहाँ गयी। ऐसा विचित्र स्वभाव श्रीरघुवीरजी का

है। जो यह स्वभाव सुनकर श्रीजानकीजीवन में चित्त की वृत्ति लीन न हुई तो उस मानव जन्म को बार-बार धिक्कार है और ऐसे पण्डितपन चतुरता बुद्धिमानी आदि पर भी धिक्कार है। यदि उनमें स्नेह नहीं बढ़ा तो सब किया हुआ कर्म निष्फलप्राय है। श्रीजानकी जीवनजी की विचित्र लीलालहरी विलोक कर ईश्वरों की मति भी चकित होकर मोह में मत्त हो जाती है पामरों की क्या कही जाय। आचार्यों के वेदमय गम्भीर वचनों के तात्पर्य जाने बिना मनुष्य व्यर्थ अनर्थमय अर्थ कल्पना करके अपने मत का वाद उठाते हैं। सरकार के अनूप स्वरूप में चित्त प्रविष्ट नहीं करते ऐसे मतिमन्द हैं। बेचारे क्या करें, बिना श्रीसद्गुरु पद पंकज कृपा के यही दशा होती है।

श्रीजानकी वल्लभजी की गम्भीरता का अनुसन्धान करने से दास के हृदय में स्वाभाविक गम्भीर गुण आविर्भूत होता है। इस गुण के विचारने से अनन्त लाभ होता है। विशेषत: यह लाभ है कि यह जो शंका थी कि कदाचित् श्रीरघुनन्दनजी हमारे अवगुणों को कहेंगे तो हमें अत्यन्त लज्जित होना पड़ेगा वह अत्यन्त निवृत्त हुई लेशमात्र भी न रहीं।

श्रीमिथिलेश सुता सुखद गहर गम्भीर अपार।
मम कृत अगुन न खोलिहैं गुन गम्भीर निहार ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण विरचिते हिन्दीभाषा वार्तिक प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे गाम्भीर्यं गुण वर्णनं नाम अष्टादशोऽध्याय:॥१८॥

अब श्रीचक्रवर्तीश्वरकुमार दिलदार गलहारजू की परम चतुरता का निरूपण किया जाता है। श्रीरघुवरजी की चतुरता ऐसी है कि केवल अपने बुद्धि वैभव से बिना प्रयास और बिना उपाय के अति दु:साध्य कर्म भी कर लेना। सब चतुरों की चतुराई निपुणाई श्रीचतुर चूड़ामणि में सिमिट आई है। कैसा भी बिगड़ा हुआ कार्य क्यों न हो उसे श्रीमहाराजकिशोरजी अपनी चतुरता से सहज में ही

सँवार देते हैं। सब ईश्वरों की चातुरी सरकार के चातुर्य सागर में बिन्दु सी हो जाती है। सरकार ने अनेक ब्रह्माण्डों की विविध रचना अपनी भिन्न-भिन्न चातुरी से की है। सर्वज्ञता और चातुर्य में थोड़ा ही भेद है। समष्टि वस्तु को नित्यलीलाविभूति में एक काल में जानने को सर्वज्ञता कहते हैं। और उसी को माधुर्यमयी प्रकट लीला में पृथक-पृथक स्वाद सहित जानने को चतुरता कहते हैं।

श्रीराजकुमारजी ऋक्ष, राक्षस, वानर, देवता, पशु, पक्षी, कीट पतंगादि सबकी भाषा पढ़े हुये हैं तभी तो सबकी रुचि पालते हैं। सरकार सब देश की भाषा जानते हैं। अर्थात् पारसी, अरबी, तुरकी कर्नाटी आदि सबमें चतुर हैं। श्रीराघवजी सभी कारीगरी जानते हैं और सबके आचार्य हैं। उनके आगे किसी की माया, दम्भ, कपट, आदि नहीं चल सकता। जो कुछ चेष्टा वह संकेत द्वारा करते हैं, उसको श्रीलक्ष्मणजी जानते हैं दूसरे सभा के लोग उसको देखकर दंग हो जाते हैं। ये सब भाव वाल्मीकि में जहाँ तहाँ प्रसिद्ध हैं।

इस गुणके अनुसन्धान से दुर्मति निवृत्त हुई और यह जान पड़ा कि परम चतुर श्रीराजकुमार से चतुराई कर पार नहीं पावेंगे। दास कपट, दम्भ, छोड़कर शुद्ध भाव से भजन करे वही इसका फल है।

चतुर सिरोमनि रामसिय हियगुनि कपट बिसारि।
भजहि सरलता धारि उर गुन चातुर्य निहारि॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण विरचिते हिन्दीभाषा वार्तिक प्रबन्धे श्रीरघुवर गुण प्रदर्शनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

श्रीरघुराजजी के स्थैर्यगुण का वर्णन यही है कि श्रीरघुवंश-कुमारजी का रूप गुण प्रताप धाम आदि सब एकरस और स्वाभाविक बना रहना कभी अन्यथा न होना। संसार के भूमि आदि अन्य सब पदार्थों के उद्भव और प्रलय सृष्टि के क्रम से होते रहते हैं जिससे वे

विनाशी हैं। अतः विनाश को विसार अविनाशी राजकुमार में भाव धारण ही सार है।

इस गुण के अनुसन्धान के दो फल हैं। एक तो उपास्य का परत्व नित्यत्व ज्ञान, द्वितीय वहाँ अपनी भी सर्वदा एकरस स्थिति।

थिर रघुवर नामादि सब चंचल वस्तु जहान।
ताते थिरसों नेह करु गुन स्थैर्य अनुमान ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण विरचिते हिन्दीभाषा वार्तिक प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे स्थैर्यगुण प्रदर्शनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अब श्री रघुवर्यभूषणजी का परम उदार गुण वर्णन किया जाता है। पात्र अपात्र और देश, काल को बिना बिचारे ही याचक मात्र को मन वाञ्छित से अधिक देना यही श्रीकौशल्यानन्दनजी की उदारता है। यह इन्हीं में पाई जाती है औरों में छाया मात्र है। श्री महाराजकुमारजी की सब सम्पत्ति स्नेही, याचक, ब्राह्मण, भाट, नट, और देवताओं ने मिलकर भोग की। केवल यश मात्र ही युगल-सरकार ने अंगीकार किया। सरकार को दिन रात देना ही भाता है, क्षण भर भी बिना दिए सरकार का मन स्थिर नहीं रहता। श्रीरघु-बीरजी ने नित्यविभूति में भिक्षुक का अभाव देख अपनी उदारता की सफलता के लिये लीला विभूति में प्रकट होते समय यह संकल्प किया कि प्रकट होकर सब जीवों को बिना कुछ साधन किये ही अपार भव-सागर से अवश्य ही पार कर दूँगा। इस प्रकार का संकल्प जब सरकार के हृदय कंज में आविर्भूत हुआ तब धर्म संस्थापक समस्त वेद, संहिता पुराणादिकों के सहित ब्रह्मादि ईश्वर तक आये और हाथ जोड़े सम्मुख हो बार-बार विनय करने लगे कि हे सर्वधर्मज्ञ शिरोमणे! हे सनातन स्वसेतु रक्षक! आपके औदार्य गुण की अधिकता से यह जो आपका विलक्षण संकल्प हुआ है वह किसी प्रकार योग्य नहीं है। इससे आपकी स्थापित मर्यादा मिट जायगी।

जिसमें राग, द्वेष, धर्म अधर्म नरक, स्वर्ग, शुभ अशुभ बने रहें वही काम सरकार दीनों पर कृपाकटाक्ष करके करें। और जो आपके भक्त वा प्रपन्न (शरणागत) थोड़े भी हों उन्हें आप अपने पद में लीन करें। वही हम लोगों का परम अभीष्ट है। यह स्नेह विनयसानी बानी सुनकर परम कृपालु श्रीरघुनन्दनजी ने उन सबों को आश्वासन-देकर बिदा किया। इसके पीछे आविर्भूत हो अनेक विचित्र लीलाओं द्वारा अमितजनों को अपने पद में आरोहण कराया और श्रीकृपालुजी ने श्रीअवध मण्डल मात्र के वासी ऊँच, नीच, कीट, पतंग सबों को नित्य विभूति में अनायास ही प्राप्त कराया। यद्यपि वेदादिकों ने शास्त्र मर्यादा भंग के भय से बहुत प्रार्थना की तो भी अपने उदारता गुण के आवेश में आकर अवधवासियों को संग ले ही गये।[1]

ऐसी उदारता न तो किसी ईश में न परेश में न अवतारों में ही पायी जाती है। अतः जो विवेक प्रज्ञा सम्पन्न हैं उनके यही परम उदार चूड़ामणि उपास्य हैं और होने योग्य हैं और तो सभी कृपणता युक्त हैं। वे उपासकों के मनोरथों को क्या पूर्ण करेंगे ? इस गुण के अनुसन्धान से यह शंका निवृत्त हुई कि जो बड़े-बड़े हैं उन्हीं को अपनी उदारता से अपनाकर श्रीरघुनन्दनजी उनके मनोरथ पूर्ण

---

1 तथोक्तवतिदेवेशे गोप्रतारमुपागताः। भेजिरे सरयूं सर्वे हर्ष पूर्णाश्रुविक्लवाः ॥

अवगाह्य जलं यो यः प्राणी ह्यासीत् प्रहृष्टवत् ।
मानुषं देहमुत्सृज्य विमानं सोऽध्यरोहत ॥

तिर्यग्योनिगतानां च शतानि सरयूजलम्। सम्प्राप्य त्रिदिवं जग्मुः प्रभासुर वपूंषि च। दिव्यादिव्येन वपुषा देवा दीप्ता इवाभवन् ॥ गत्वा तु सरयू तोयं स्थावराणि चराणि च। प्राप्य तत्तोयविक्लेदं देवलोकमुपागमन् ॥ तस्मिन्नपि समापन्ना ऋक्ष वानर राक्षसाः। तेऽपि स्वर्गं प्रविविशुर्देहान्निक्षिप्य चाम्भसि ॥ ततः समागतान् सर्वान् स्थाप्य लोकगुर्रुदिवि। जगामत्रिदशैः सार्धं सदा हृष्टैर्दिवं महत् ॥ वा० ७।११०।२३-२८

करते हैं। हम सरीखे अल्प सुकृतियों के मनोरथों को यथार्थतः नहीं पूरा करेंगे' यह शंका बहुत दूर उड़ गयी। जैसे प्रबल वायुसे तूल आदि खोजने पर भी नहीं मिलते यदि उदारता गुण को विचारें तो अपनी और कृपण लोगों की कृपणता उपासक के मन से अवश्य ही निवृत्त हो जाय। ये ही और अन्य भी इसके अनेक फल हैं। इन बातों पर दृढ़ करके विश्वास करना चाहिये।

परम उदार बिहार पर परतम राजकुमार।
भजहिं कृपणता दूर करि सुखसहिता गुनसार॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण विरचिते हिन्दी भाषा वार्तिक प्रबन्धे श्रीरघुबर गुणदर्पणे औदार्यगुण वर्णनं नाम एक विंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

अब कौशलेशसूनुजी के परम अनूप धैर्य गुण का वर्णन किया जाता है। काम क्रोधादि की प्रबलता से जनित उद्वेग के वशीभूत और उनसे कभी बाध्यमान न होना यही धैर्य गुण श्री महाराज-किशोरजी का विवेकीजन कहा करते हैं। अनेक प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त हैं तो भी धैर्यपूर्वक कार्य सिद्ध करना, शीघ्र नहीं, और जो काम करना वह सब धैर्य युक्त करना यही परम धैर्य है। यह विचारने की बात है कि अनेक नास्तिक पाखण्डी, दैत्य, दानव, उनका अनेक प्रकार से खण्डन भी करते है तो भी अपने धैर्य गुण के प्रभाव से कुछ भी उद्वेग नहीं पाते। जैसे किसी मतवाले हाथी में हजारों मच्छर लगने पर भी वह तनिक उद्वेग नहीं पाता ऐसे ही एकदेश दृष्टान्त से जानना चाहिये।

यदि वह -सरकार नाराज होते और थोड़ा भी उद्वेग पाते तो तीनों लोक में वे-दुष्टगण नहीं रहने पाते किन्तु ऐसा नहीं हुआ है। इसी प्रकार श्री अवध काण्ड में महारानी कैकेयीजी के प्रति कठोर मर्मवेधी वचनों को सावधान हो धैर्यपूर्वक सुनते रहे। और भी अनेक

ठौर युद्धकाण्डादि में श्री महाराजनन्दनजी का धैर्य विदित है कहाँ तक लिखा जाय यह धैर्य गुण परम भाग्य का फल है।

श्री जानकी वल्लभजी के सभी गुण विलक्षण हैं, वे श्री मद्-वाल्मीकीय में प्रसिद्ध ही हैं। श्री राघवजी अपने गुणों से सबों का मनोरञ्जन करते हैं। सदा ही रसखान मन्द-मन्द मुस्कान करके प्रथम आप ही कुछ मनोहर रससानी वाणी बोलते हैं। परुष वा कठोर वचन तो किसी ने स्वप्न में भी श्री महाराजनन्दनजी से किसी काल में नहीं सुना तथा किसी ने मिथ्या सम्भाषण भी कभी नहीं सुना। श्री रघुनन्दनजी सब लोगों के परम प्रियतम हैं, सबके हित-कारी हैं, कभी किसी का दोष नहीं देखते। किसी में थोड़ा भी गुण-हो तो उसे बहुत मानकर ग्रहण करते हैं यही उनका सहज स्वभाव है। श्री रघुनन्दन जी सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं तो भी निजभक्तों के करोड़ों अपराधों के जानने में महामुग्ध सम हो जाते हैं। आपके गुण स्वभाव की बलिहारी है। किस अधम को ऐसा सुन्दर ठाकुर नहीं भावेगा ?

इस गुण के अनुसंधान से यह अलभ्य लाभ हुआ कि नवीन भी बड़ा अपराध हो पर शरणागत होने पर क्षमा की जायेगी, दण्ड नहीं दिया जायगा। श्री राघवजी धैर्यवान हैं इस पर सुग्रीवजी का प्रसंग जानना चाहिये।[1]

धैर्य्यगुण के विचारने वाले को भजन में कभी विघ्न नहीं होगा, दृढ़ विश्वास रखना चाहिए।

धीर वीर रघुवीर गुन, धीरज हृदै विचारि।
तजहु सकल उद्वेग निज, युगलानन्य सम्हारि॥

---

1 पादयोः पतितं मूर्ध्ना तमुत्थाप्य हरीश्वरम्।
प्रेम्णा च बहुमानाच्च राघवः परिषस्वजे॥
(वा०रा० ४।३८।१९)

इति श्री युगलानन्यशरणविरचिते हिन्दी भाषावार्तिकप्रबन्धे श्री रघुवरगुणदर्पणे धैर्यगुणप्रदर्शनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।।२२।।

अब श्री महाराज कुलमण्डन जी का शौर्यगुण निरूपण किया जाता है। सबसे निर्भय रहना और युद्धादि में अत्यन्त उत्साह रखना यही शूरता गुण है। यह बिना यत्न के ही क्षत्रियोत्तमों को परम गति तथा सुयश का देने वाला है। सरकार में तो यह शूरता सदा एक सी और कुलानुरूप स्वाभाविक है। करोड़ों देव-दानव दैत्यादि संग्राम में एक ओर से जुटें और एक ओर केवल श्री रघुनन्दनजी रहें तो भी सब क्षण ही भर में सहज ही में हार जायँ। श्री रघुवीरजी के विरोधी को ब्रह्मा-विष्णु आदि कोई नहीं रख सकते औरों की कौन गिनती है ? यह बात जयन्त रावणादि के प्रसङ्गों में विदित है।[1]

अपनी शूरता श्रीमुख से युद्धकाण्डादि में कही भी है। आपके धनुष के टङ्कोर का प्रताप अमित और अपार है उसे कौन कह सकता है ? एक बार के टङ्कोर करने से असंख्य राक्षसों का नाश होता है।

सरकार की शूरता स्मरण करने से यह शंका निवृत्त हुई कि एक तो यमराज के सबसे प्रबल दण्ड का भय निवृत्त हुआ; दूसरे परमार्थ की ओर की अपनी कादरता भी दूर हुई यही परम फल है।

---

1 अनुसृप्तस्तदा काको जगाम विविधां गतिम् ।
लोककाम इमं लोकं सर्वं वै विचचार ह ॥
स पित्रा च परित्यक्तः सुरैश्च समहर्षिभिः ।
त्रींल्लोकान् सम्परिक्रम्य तमेव शरणं गतः ॥

स तं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतम् । वधार्हमपि काकुत्स्थः कृपया पर्यपालयत् ॥ वा०रा० ५।३८।३२,३४

ब्रह्मा स्वयम्भूश्चतुराननो वा रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा । इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा त्रातुं न शक्ता युधि राम वध्यम् ।।वा०रा० ५-५१-४५

सूरसिरोमनि सर्वविधि, रघुकुलमनि सुखकन्द।
तू तज जड़ कादर्यता, भज पदपङ्कज द्वन्द ।।

इति श्री युगलानन्य शरणविरचते हिन्दीभाषावार्तिक प्रबन्धे श्री रघुवरगुणदर्पणे शौर्यगुण प्रदर्शनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः।२३।

अब आश्रित आर्तिहरण जी के वीर्य गुण का वर्णन किया जाता है। पुरुषार्थ सहित प्रतिदिन बढ़ती हुई जो एकरस अखण्ड शक्ति वही वीर्य गुण है। वीर के भाव को वीर्य कहते हैं। पाँच प्रकार के वीर होते हैं-त्यागवीर, दयावीर, विद्यावीर, पराक्रमवीर और धर्मवीर। सरकार पाँचों वीरता से पूर्ण हैं और सभी वीर रघुवीर पद के अन्तर्गत हैं।[1]

इस गुण के अनुसन्धान से अनेक फल प्राप्त हैं। विशेष करके इस शंका की निवृत्ति कि मेरे रक्षक सरकार कभी क्षीण शक्ति न हो जावें।

परमवीर रनधीर श्री रघुकुल मण्डन प्रान।
अभय करन संसयहरन, तारन तरन सुजान ।।

इति श्री युगलानन्यशरणविरचिते प्रबन्धे श्री रघुवरगुणदर्पणे वीर्यगुण प्रदर्शनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः।२४।

अब श्री चक्रवर्तीश्वर कुमारजी के तेजगुण का निरूपण किया जाता है। अपने अधीन अनेक परिकर (पार्षद वा परिवार) तथा चतुरङ्गिणी सेनाओं की अपेक्षा न करना केवल औरों के उद्दीपन के लिये रखना। अर्थात् अपने ही तेज से सब प्रकार की विजय करना और किसी से किसी प्रकार न हारना। और प्रताप का प्रभाव ऐसा है कि करोड़ों सूर्य से अधिक प्रतापी और बड़े से बड़े प्रतापी भी दृष्टि बराबर नहीं कर सके। और जो कभी नहीं देखा गया हो वह

---

1 दानवीरो दयावीरो विद्यावीरो विचक्षणः। पराक्रम महावीरो धर्मवीरश्च शाश्वतः। पञ्चवीराः समाख्याताः राम एव सपञ्चधा। रघुवीर इति ख्यातः सर्ववीरोपलक्षणः ।।

भी देखने पर देखा ही सा जान पड़े इत्यादि अनन्त लक्षण सम्पन्न तेज गुण है। यह गुण परमतेजस्वि अग्रगण्य श्री राघवजी में ही यथार्थतः देखा जाता है।

वह श्री राघवजी भक्तों को पूर्णचन्द्र से भी अधिक मोद-प्रमोद देते हैं और अभक्तों को कालानल के समान दिखायी पड़ते हैं। श्री जानकीवल्लभजी के परम मनोहर कटाक्ष श्रीमारुतनन्दनजी के लिये तो प्रतिक्षण महाशीतल और परमानंदवर्द्धक हैं। सागर को उनसे बहुत रोष जान पड़ता है, श्रीसुग्रीवजी को वे अनुरक्त दीखते हैं। राक्षसों को वे पूर्ण कोपमय देख पड़ते हैं, श्रीसुमित्रानन्दनजी को परम स्नेह सम्पन्न जान पड़ते हैं। इसी प्रकार अधिकारियों के अनुसार सब अंगों की रीति विचारनी चाहिए।

सूर्य ब्रह्मादि सब देवताओं को इसी तेज का कुछ लेश पाकर तेजस्वी जानिये औरों की क्या गिनती है? इस तनुतेज का प्रकाश ही वेदान्त प्रतिपादित अखण्ड एकरस चिदाकाश ब्रह्म कहलाता है।

"परब्रह्म यस्य तनुभा:"। अत्यन्त विवेकी ही इस तेज का रहस्य जानते हैं किन्तु जो पाण्डित्याभिमानी हैं वे क्या जानें? इसी तेज के लवलेश से अखिल ब्रह्माण्ड की रचनादि होती है अब इस तेज का प्रताप कहाँ तक कहा जाय।

इस तेज गुण के अनुसन्धान का फल यह है कि रघुनन्दनजी के पदपङ्कजों में अति स्नेह करने वालों के चित्त की यह शङ्का कि हमारे भीतर की कामादि अनेक दुर्वासनाओं तथा बड़े-बड़े बलिष्ठ अविद्यामय महातमरूप निशाचर समूह का विनाश कैसे होगा? तुरन्त निवृत्त होती है, जैसे गरुड़ के भय से पन्नगगण दूर भागे। यह तेजगुण सदा विचार किया जावे तो अवश्य ही दास परमतेजोमय हो जावे यह अनुपम गुण आश्रितोपयोगी है।

तेजस्वी तेजायतन, तेजद ईस परेस।

सेइय मन क्रम वचन ते, तम नासन हित वेस ।।

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दी भाषा वार्तिक प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे तेजोगुणवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्याय: ।।२५।।

अब श्रीरघुवीरजी के बलगुण का निरूपण किया जाता है। बल उस गुण को कहते हैं कि अत्यन्त परिश्रम का कार्य करने पर भी तनिक परिश्रम नहीं जान पड़े। बल धातु का अर्थ बन्धन भी है। अर्थात् वह बल अपनी माया से सबको वेष्टन–बन्धन युक्त किये हुये हैं। उससे ब्रह्मादिदेवगण भी बँधे हुए हैं जैसे वृषभ नाथे हुए हों। सभी उसी में गुथे हुए हैं जैसे सूत में मणिगण। श्रीमहाराजकुमारजी का बल माधुर्य ऐश्वर्य दोनों से विलक्षण है। विष्णु आदि से अवध्य बड़े बड़े राक्षसों को आपने अपने बल से क्षण भर में धूल में मिला दिया यह माधुर्यमय बल है।

इस गुण के अनुसंधान से यह संशय निवृत्त हुआ कि हम लोग अनन्य सरकारी हैं। हमारे रक्षण धारण पोषण में कभी श्रम ग्लानि वा वैराग्य न हो जाय। बलगुण की अनुकम्पा से यह लाभ हुआ।

बलगुन रघुवर मनन करु, त्यागि अचल जग संग।
रे मन इह सिद्धांत मत, सर्वोपरि नवरंग।।

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषावार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुणर्पणे बलगुण प्रदर्शनं नाम षडविंशोऽध्याय: ।।२६।।

अब परममनोहर श्रीजानकीवल्लभजी के सौन्दर्य गुण का प्रथम निरूपण किया जाता है परम सौन्दर्य का प्रथम लक्षण यही है कि अङ्गों में यथायोग्य जहाँ जैसा अनुपम माधुर्य चाहिए वहाँ वैसा भलीभाँति रहे और मेघों की घटा के समान प्रतिक्षण नवीन छटा का उदय होता रहे। ऐसा ही सौन्दर्य श्रीसुकुमारांग जी का है, जो परमसुन्दर कामादिकों का भी परम माननीय है। द्वितीय लक्षण इसका यह भी है कि प्रत्येक अंग परस्पर एक से एक

मनोहर अद्भुत रंगीन और विलक्षण हैं। जहाँ ही चित्त मन वा नेत्र जाते वहाँ ही अटक जाते हैं। तीसरा यह भी लक्षण उक्त अनूठे सौन्दर्य का है कि जिस अंग पर दृष्टि तनिक भी पड़ी उसी अंग से परात्पर परमानन्द अत्यन्त शीघ्र अनायास ही प्राप्त हुआ। चौथा यह कि जो अंग देखा उसे छोड़कर मन द्वितीय अंग देखने को नहीं चाहता। पाँचवां मनहरण रसभरण लक्षण यह है कि कोई अंग न्यून अधिक नहीं है। सामुद्रिक-शास्त्रानुसार सभी सुचिह्नों से पूर्ण हैं, दोषों से रहित हैं और परम दिव्य भव्यगुणमय हैं। करोड़ों चिन्तामणि कल्पतरु से भी अधिक गुणसम्पन्न है ये पाँचों प्रकार की सुन्दरता पतिव्रता पत्नी सी श्रीरघुनन्दनजी के अंगों की हो रही है। धर्म विचारकर अन्यत्र नहीं जाती क्योंकि अन्य सभी अयोग्य कूप से हैं। यही जान पड़ता है कि चितचोर श्रीमहाराजकिशोरजी ही एक यथार्थ सुन्दर हैं और सब नाममात्र के हैं।

इस सौन्दर्यगुण के प्रकाश के लिये श्रीमद्रामायण सुन्दरकाण्ड के श्लोकों का वार्तिक अर्थ लिखा जाता है जो श्रीजानकीजी से श्रीहनुमानजी ने कहा था। श्रीकिशोरीजी ने कहा कि यदि तुम मेरे श्रीप्राणप्रियजी के निकटवासी हो तो उनके गुण तथा रूपादि का वर्णन करो। इसमें ध्वनि यह है कि जो उपासक वा सम्बन्धी होगा वह अंगों और गुण का वर्णन ठीक ठीक कर सकेगा। इतने ही द्वारा श्रीस्वामिनीजी ने स्नेहियों का लक्षण जना दिया। उनकी परम-रससानी वाणी सुनकर श्रीहनुमान्जी मधुर गिरा से बोले। पहले तो सामान्य रीति से लक्षण कहा पीछे नखशिख का निरूपण किया यथा—

हे श्रीस्वामिनीजी ! रसिकचित्तचन्दन श्रीरघुनन्दनजी के नयन मञ्जुकञ्जके निरादर करनेहारे कजरारे रतनारे शीलसागर सुधा-सुधारे प्राणप्यारे विशाल डहडहे मनहरण और सुख के अयन है।

रूपयौवनादि गुण सम्पन्न रसमय विग्रह हैं। उच्च अनुपम और सुपुष्ट कन्धे हैं, भक्तभयहारी और जानुलम्बी दीर्घ भुजा हैं। त्रिरेखा और स्वच्छ भूषणगणसम्पन्न कम्बुसदृश विलक्षण कण्ठ हैं। कोटि चन्द्रों का भी निरादर करने वाला सुखसदन बदन है। जत्रु ग्रीवा के समीप की पसलियां गूढ़ माँसभरी पुष्ट हैं। राम यह अभिराम नाम सुन्दर सर्वोपरि परमपावन कामपूरक और सर्वलोक विदित है।

हृदय मुट्ठी और पहुँचा ये तीनों जिसके स्थिर दृढ़तर होते हैं वह राजा होते हैं। भौंह, बाहु और मेढ़्र ये तीनों जिसके लम्बे होते हैं वह धनी होता है। केशों के अग्रभाग वृषण और जानु घुटने ये तीनों जिसके कांपते न हों उच्च हों माँसल हों वह पृथ्वीपति होता है। नेत्र नख हाथ-पाँव के तलवे ये तीनों जिसके लाल हो वह सदा सुखी रहता है। चरण रेखा केश और लिङ्गमणि ये तीन जिस पुरुष के सचिक्कण हों वह महाभाग्यवान देखा जाता है। स्वर गति और नाभि ये तीनों जिसके गम्भीर हों वह बड़ाई के योग्य होता हैं। उदर कण्ठ और मस्तक इन तीनों ठौर जिसके बलि पड़ी हो वह बड़ाई के योग्य होता है। जिस पुरुष के पांव का तलवा, तलवे की रेखा और स्तनों की चूचुक मुख गम्भीर भीतर ही डूबे हुये, ऊंचे नही हों वह बड़ाई के योग्य होता है। ग्रीवा इन्द्रिय (लिङ्ग) पीठ और जांघ ये जिसके छोटे हों वह पूजनीय होता है। मस्तक जिसका गोल विशाल छत्राकार और तीन आवंत युक्त हों वह राजराजेश्वर होता है। जिसके अंगुष्ठ के मूल में चार रेखायें हों वह चारों वेदों का वक्ता होता है। एक एक रेखा एक एक वेद की जानकारी जाहिर करती हैं। जिसके ललाट में चार रेखायें हों उसकी आयु दो सौ वर्षों की होती है। जिसके ललाट में तीन रेखायें हों उसकी आयु एक सौ वर्ष की होती और जिसकी दो रेखायें हों उसकी आयु साठ वर्ष की होती है और जिसकी एक रेखा हो वह बीस वर्ष जीता है। जिसके तलवे में ध्वज,

वज्र, अंकुश, शङ्ख आदि रेखायें हों और अपने हाथ से चार हाथ का उसका शरीर हो वह मनुजेन्द्र होता है। २४ अँगुल का एक हाथ होता है। श्रीरघुनाथजी में ऐसे ही अपूर्व सभी सुलक्षण हैं। बाहु जानु उरु गण्डस्थल ये जिसके सम हों वह भाग्यवान् होता है। दोनों भौंहें दोनों नासापुट, दोनों नेत्र दोनों श्रवण, दोनों ओष्ठ, दोनों चूचुक (स्तनाग्र) दोनों पलकें, दोनों पहुँचे, दोनों जानु, दोनों अण्डकोश, दोनों कटि, दोनों हाथ, दोनों पाँव, दोनों बगल ये चौदहो जोड़े जिसके सम हों वह राजा होता है। जिसके चारों सुन्दर दाँत मनोहर और कुछ ऊँचे स्पष्ट झलकते हों वह मङ्गलरूप होता है। गज, सिंह हंस एवं वृषभ के समान जिनकी चाल है वह पुरुष उत्तम कहलाते हैं। ओष्ठ जिसके विम्बा आदि की अरुणाईके हरण करनेहारे हों, हनु मांसपूर्ण दिव्य और विचित्र हों, नासिका दीर्घ और उच्च हो वह पुरुष श्रेष्ठ होता है। वाक्य मुख नख रोम त्वचा ये पाँच जिसके सचिक्कन हों वह पुरुष श्रेष्ठ होता है। दोनो हाथ की चार और दोनों पावों की चार हड्डियाँ दोनों हाथ, बाँह, जंघा ऊरू ये आठों जिसकी लम्बी हों वह भाग्यवान् होता है। मुखमण्डल, नेत्र, मुख, जिह्वा, ओष्ठ, तालु स्तन, नख, कर पद ये दसों जिसके कमल सदृश हों वह श्रेष्ठ होता है। उर [छाती] शिर, ललाट, ग्रीवा, बाहु, नाभि पांव, पीठ कान कंधा ये दशों जिसके बड़े-बड़े हों वह सुखी रहता है। जो तेज यश श्री इन तीनों से युक्त हो वह श्रेष्ठ होता है। जिसके माता-पिता के दोनों कुल शुद्ध हों और कांख पेट नाक कंधा ललाट ये छओं अंग ऊँचे हों वह सबों को सुख देने वाला होता है।

अंगुली के पोर, केश रोम, नख, त्वचा, शेफ इत्यादि जिनके पतले हों वे मनुष्य दीर्घजीवी होते हैं। दाढ़ी मूंछें जिनकी स्फटिक सी चमकीली सूक्ष्म (बारीक) हों सुन्दर और नरम हों, दृष्टि और बुद्धि भी सूक्ष्म हो वे सुखी रहते हैं। जो प्रातः मध्याह्न साँझ तीनों

काल में क्रमशः धर्म अर्थ काम का सेवन करता है वह सुखी रहता है। इत्यादि शुभ लक्षण श्रीरघुनन्दनजी में सदा निवास करते हैं। संक्षेप में श्री मारुतनन्दनजी ने जब श्रीकिशोरजी से प्रभुके गुणों का वर्णन किया तब वह प्रसन्न हुई।

इस सौन्दर्यगुण के अनुसन्धान के सब मनोरथों का लाभ होता है विशेष करके मन नेत्र और बुद्धि आदि की एकरस स्थिरता होना यह परम लाभ है और अन्य सौन्दर्यों को त्याग कर इसी श्रीराघवजी के नखशिख सौन्दर्यरस का दृढ़ नियमपूर्वक पान करना उचित है।

—: ❀ दोहा ❀ :—

नख शिख नव सौन्दर्यता, करहिं पान ब्रत ठान ॥
युगलानन्य न याहि सम, अपर सधाना मान ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण-विरचिते हिन्दीभाषा वार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे सौन्दर्यगुणवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अब अनुपम छविधारी श्रीजानकीविहारीजीके परम रससागर उजागर मधुर माधुर्यगुण का निरूपण किया जाता है। जो समस्त स्वादुओं की अवधि हो, पित्तकफादि रोगों का नाशक हो और रसमय हो उसको मधुररस कहते हैं। उसी के गुण को माधुर्यगुण कहते हैं। जो परम रसिक रंगीन भावुकों का जीवनरूप हैं। अनेक प्रकार की वस्तुएं लोक और वेद में मधुर देख पड़ती हैं उन सबों की मधुरता श्रीकोशलेशकुमार जी की मधुरता देखकर लजा जाती है। मोचाफल, काम्बोज, दाडिम, आम, खजूर; पनस नारिकेल, दाखपाक, मधु, इक्षु, गुड़, शर्करा चीनी मिसरी, कन्द, दुग्धपाक, सुधा इत्यादि अनन्त पदार्थ मधुर कहलाते है, परन्तु जब श्रीरघुबीरजी की मधुरता प्राप्त होती है तब वे सभी सीठे पड़ जाते हैं। तात्पर्य यह कि वे सभी अनित्य तथा प्राकृत हैं। उनमें जो कुछ मधुरता का आभास है वह केवल

श्री रंगीन गुणसागरजी के मधुरगुण के रंचक अंशसे प्राप्त है। वस्तुतः उन वस्तुओं की अपनी मधुरता कुछ नहीं है।

जबतक इस नाम रूप माधुरी में चित्त आसक्त नहीं होता तब तक लोक वेद सब मधुर से भासते हैं। श्रीजानकीप्राणजीवन जी अति मधुर हैं वह अपनी मधुर दृष्टि के निक्षेप से भृत्य का भय अनायास ही दूर कर देते हैं। प्राणहारी कठिनतर हलाहल ज्वाला स्वरूप करालकाल को सहज ही में शान्त कर देने के लिये श्रीरामनाम श्रीरामधामादि सभी सुधा धारामयी मेघमाला है। मानव तन पाकर ऐसी सुधा का जिसने नहीं पान किया वे राक्षस से भी सौ करोड़गुण अधिक पापात्मा हैं। वे सदा ताप और कालव्याल के ज्वालामाला से तपेंगे। स्त्री पुरुष नपुंसक वा चराचर जिस किसी ने इस परम-अमृत का पान किया उसके जरामरणादि रोग शोक अनायास ही और निस्सन्देह मिट जाते हैं।

मधुर मनोहर श्रीरघुनन्दनजी का अनुसन्धान करते हुए मनुष्य जहाँ चाहे वहाँ रहे, उसको संसारताप की बाधा सपने में भी नहीं होती। सुधा से भी सौगुनी अधिक जीवनमूरिसम श्रीरामनाम तथा श्रीरामरूपादि जिसके हृदयकंज में तनिक भी प्रविष्ट हुआ, वह चाहे तो प्रलयकाल के कालानल के मुख तथा हलाहल में भी निर्भय होकर प्रवेश करे तो तनिक भी उसे कष्ट नहीं हो सकता। श्रीरघुनन्दन जी शृंगाररस की मूर्ति हैं; अतः उनमें परममधुरता सहज ही है और वह शृंगाररस के राजा हैं। अतः मधुरता विशेष है ऐसी माधुरी देखकर भी श्रीजानकी जी से विमुख होकर जो नायिकाएं उनसे रमण करने की इच्छा करती हैं शूर्पणखा की गति पाती हैं इसमें सन्देह नहीं। अतः तदनुकूल रहना ही उत्तम है। श्रीरघुनन्दन जी से विरोध करके जो केवल श्रीजनकनन्दिनी जी में स्नेह करते हैं वे भी रावण की गति पाते हैं। अतएव युगलोपासना सर्वोपरि उचित है।

इस परम दिव्यगुण के चिन्तन से एक लाभ तो यह कि रूखे चित्त में भी सरसता की प्राप्ति, दूसरे अन्य मधुरता में इस स्वाद का अभाव, तीसरे स्नेहहीन केवल शुष्क वैराग्य का त्याग और युगलमाधुरी के चिन्तन में अत्यन्त रुचि अनुराग इत्यादि अमित अमल फल हैं सब वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकेगा ?

❀ दोहा ❀

मधुर मनोहर मोदमय, मंजुल मानसहंस ।
गुन माधुर्य अनूप सुठि, रसिक अनन्य प्रसंस ।।

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषा वार्तिक प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे माधुर्यगुणप्रदर्शनं नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ।।२८।।

अब अनूप रूपगुण का निरूपण किया जाता है। नवीन प्रवीण श्री सुषमासिन्धुजी के रूपगुण का यही लक्षण है कि जहाँ किसी की दृष्टि अचानक भी पड़ी कि फिर उसका हटना कठिन हुआ। चर और अचर सभी उसकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं रसिकों की कौन कहे ? जैसे चुम्बक को देखकर लोहा जड़ से उखड़ कर उसमें स्वयं लग जाता है, ऐसा ही स्वभाव इस रूप का है। जैसे दीपक को देखते ही उसमें पतंग नर-मादा लीन हो जाते हैं वैसे ही नारी पुरुष सब श्री महाराजनन्दनजी में रमण की इच्छा करते हैं। अर्थात् नर के रूप में नर की काम चेष्टा नारी भाव से नहीं होती पर श्री राजीवनयनजी को देखते ही महामुनिज्ञानी योगी और रुखे चित्त वालों ने भी स्त्रीभाव को प्राप्त होकर रमण की इच्छा की है।[1]

1 पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्य वासिनः ।
दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन्सुविग्रहम् ।।
ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्नाः समुद्भूताश्च गोकुले ।
हरिं सम्प्राप्य कामेन ततो मुक्ता भवार्णवात् ।।—पद्मपुराण,

ऐसी अद्भुत रूपछटा यहाँ–सरकार में ही पायी जाती है दूसरे में तो कहीं यह रहस्य सुनने में भी नहीं आया। अतः यह रूप विलक्षण मदनबाण के समान है। औरों के रूप की जो कुछ छटा देवताओं और अवतारों में देख पड़ती है वह केवल श्री महाराजकुमार की ही बकसी हुई है। श्री रघुनन्दनजी में तो सरस रूप की क्षण-क्षण नवीन छटा स्वयं सिद्ध और एकरस है अतएव नेत्रों की सफलता इसी रूप के अवलोकन में है।

रतनारे कजरारे नैनवारे द्विभुज श्यामसुन्दर की उस रसीली मनोहर मूर्ति में ऐसा रूपगुण स्थित है कि जिसमें हरितमणि श्याम घनादिकों की असंख्य सुषमायें वारी जाती हैं। यद्यपि भगवान् की असंख्य मूर्तियाँ हैं परन्तु श्री राघवजी की नखकांति की भी समता उन रूपों में नहीं पायी जाती और की यहाँ क्या चल सकती है? केवल श्री रघुनायकजी की मनोहर मूर्ति ही रसिकों के स्नेह करने योग्य हैं जो नख से शिखा पर्यन्त शुद्ध सच्चिदानन्दमय है और जिसमें देही-देह का विभाग नहीं है। वे केवल मतवादरूपी अन्धकार में पड़े हुये हैं जिसने इस छवि को स्वप्न में भी नहीं देखा है और जो कुतर्क–वादी हैं। इनके नख की छटा ही अखण्ड अनामय व्यापक गुण सम्पन्न ब्रह्म है। अतः इनके समान यही हैं; अनुपम होने से किसकी उपमा दी जावे।

वे ही धन्य धन्यतर हैं जो इस रसमय विग्रह के अवलोकन की चाह अभिलाषा किया करते हैं। पर नीचों के सिरताज वे हैं जिनके मन वचन इनसे विमुख हैं। जो सब गुणों से युक्त हैं या बड़े महान् लोकों में प्रसिद्ध हैं परन्तु इस दरबार से बाहर हैं वे शूकर श्वान से भी अधमतर है। जिनको चितचोर श्री राजकिशोरजी ने दृगकोर से नहीं देखा और जिसने सरकार की स्तुति प्रार्थना नहीं की, वे नीच पाजी सब लोकों में निन्दा के भागी होते हैं अर्थात् उनकी प्रशंसा कहीं

नहीं होती और स्वयं भी निन्दा से भरे रहते हैं। प्रायः सभी श्री महाराजकुमार के गुणतन्तु में बंधे रहते हैं किन्तु एक अधमाधम आत्मघाती नहीं क्योंकि उनको वह रूप दुर्लभ होता है। श्री लक्ष्मणादि सभी भ्राता परस्पर समान श्रेणी के हैं परन्तु सरकार के गुणों के वश होने के कारण वे अपने को दास से भी लघु मानते हैं।

इस रसमय रूप गुण के अनुसन्धान से रूप में चित्त की अत्यन्त संलग्नता होती है और अधिकारियों का अन्य सब रूपों से चित्त का उच्चाटन और विस्मरण हो जाता है यही अपूर्व परम लाभ है।

-※ दोहा ※-

रूप अनूपम जानकीजीवन सब सुखसार।
युगलानन्य विहाय भ्रम, करिय सदा उरहार॥

इति श्री युगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषा वार्तिकप्रबन्धे श्री रघुवरगुणदर्पणे परम सिद्धान्ते रूपगुणनिरूपणं नाम एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः।२६।

अब सुखरसखानि श्री जानकीजानिजी की रसमयी मनोजमोहिनी मूर्ति के सुकुमार अंगों की उमंग तरंगों में अगुण गुणकारणभूत जो अद्भुत छः गुण विराजमान हैं वर्णन किये जाते हैं। जिनके श्रवण मनन से आधि व्याधि और उपाधियाँ निवृत्त होती हैं। औज्वल्य, नैर्मल्य, स्वच्छत्व, शुद्धत्व सुषमा और देदीप्यमानत्व ये ही छः गुण हैं। विचक्षणगण इनके लक्षणों को जानकर अनुक्षण मनन किया करते हैं।

औज्ज्वल्य गुण तमोगुण का विरोधी अर्थात् नाशक और प्रकाशक है। तात्पर्य यह कि जहाँ तम है वहाँ औज्ज्वल्य नहीं और जहाँ औज्ज्वल्य है वहाँ तम का अभाव रहता है। निर्मलता का विरोधी अर्थात् बाधक कुत्सितत्व है। जहाँ युक्ति ज्ञान विवेक सभी

व्यर्थ होते हैं, इससे निर्मलता जाती रहती है और मलिनता छा जाती है। रजोगुण के सम्बन्ध से स्वच्छता जाती रहती है क्योंकि वह विक्षेपमय गुण है। अभक्ष्य माँसादि और अपेय मद्यादि के योग से शुद्धता नष्ट होती है। वृद्धता और श्वेतकेशादि से सुषमा नष्ट होती है। भक्तिरहित पराधीनता से देदीप्यमानत्व नष्ट होता है। ये छः अवगुण उपर्युक्त छः गुणों के निवर्तक हैं। श्री रामचन्द्रजी के गुणों पर इन दोषों की छाया स्वप्न में भी कभी नहीं पड़ती क्योंकि वह सब प्रकार से दिव्य है।

उज्ज्वलता तो सरकार में चन्द्रमा से भी करोड़ गुण अधिक है। निर्मलता रसवन्त सन्तों के मन से भी बढ़ी हुई और शरद्काल के मेघरहित आकाश से भी अधिक है। स्वच्छता स्फटिकमणि से भी कहीं बढ़ी हुई है। माया रचित विषयादिकों का लेश भी आप में नहीं है क्योंकि शुद्ध है वरन् उन्हीं से शुद्धता उत्पन्न होती है। देहादिजनित क्लेश, कर्म, कर्मफल, और कर्मवासना ये थोड़ी भी जिसमें नहीं वह परेश है, ऐसा योगसूत्र में लिखा हुआ है। ऐसा लक्षण पूर्ण-पूर्ण यथार्थरूप से केवल परात्पर श्री महाराजसूनु में भलीभाँति पाया जाता है। सुषमा परम कान्ति शोभा को कहते हैं—वह श्री मद्रामायण की युक्तियों से श्री रघुनन्दनजी में सनातन और एकरस पायी जाती है। मुनिजन के मन श्री सीतेशजी के अनन्त गुणगण के मनन करने हारे हैं। इन्हीं गुणों के दो एक छींटे जिसमें पड़ गये वह ईश्वर कहाने लगा। सरकार अपनी अङ्गप्रभा से करोड़ों ब्रह्माण्डों को प्रकाशित करते हैं। आप श्री निकुञ्जबिहारी जी सदा नित्य निर्मल अखंड श्री साकेतधाम में रासादि क्रीड़ाओं में तत्पर रहा करते हैं। इन सबों पर प्रमाण श्री वाल्मीकीय रामायण में स्पष्ट है, वहीं से जानना चाहिये। समस्त वासना बीजों का निरास करके सर्वसद्गुणशाली श्री वनमालीजी के रूपनाम में प्रीति प्रतीति

सब मुमुक्षु जीवों को करनी चाहिए। सबको यही सुनने कहने मनन करने और अभ्यास करने योग्य है।

उक्त छः गुणों के अनुसन्धान से नाना प्रकार के फलों का लाभ होता है विशेष करके तो विरोधियों की निवृत्ति यही परम फल है।

❀ दोहा ❀

षटगुन खटपट हरन हित, चटपट करु चितचाव।
लटपट विषय विकार तजु, अटपट विनु दृढ़भाव॥

इति श्रीयुगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषावार्तिकप्रबन्धे श्री रघुवरगुणदर्पणे षड्गुणनिरूपणं नाम त्रिशोऽध्यायः॥३०॥

अब सुखसागर नटनागरजी की सुगन्धता का निरूपण किया जाता है। श्रीरघुराईजी की मनभाई सुरभिता अत्यन्त आश्चर्य के सहित स्वमति के अनुसार वर्णन की जाती है। जिन अङ्गों के सुगंधलेश से अधिष्ठाताओं के सहित अखिल ब्रह्माण्ड सुगन्धित रहते हैं। ऐसी सुरभिता जगवन्दन रसिकचितचन्दन श्रीराजनंदनजी की है और सब जीव तो दुर्गन्धयुक्त हैं। कोई छाग के सम, कोई भेष सम, कोई गज सम, कोई भैंसा सम, कोई मीन सम, कोई रेतसम, कोई छछुन्दर के समान दुर्गन्ध अंगधारी हैं। सब मनुष्यजाति दुर्गन्धित हैं। इन सबों को श्रीरघुवंशमणिजी की सेवा का अधिकार, परत्व वा माधुर्य किसी विषय में नहीं है। श्रीरघुनाथजी अपने सौशील्यगुण से चाहे भले ही उनके वश हो जावें परन्तु परम्परा यही है कि भूतशुद्धि तथा भलीभांति सुगन्धादि लेपन करने पर ये बाहर-भीतर सेवा के अधिकारी होते हैं क्योंकि सुखसागर श्रीमहाराजकुमारजी परमसुगन्धित हैं। दुर्गन्ध से तो सामान्य देवता भी भागते हैं श्रीमहाराजनन्दनजी की कौन कहे? देवतागण तेजोमय सुगन्ध सम्पन्न होते हैं। उनसे करोड़ों गुना अधिक सब दोष रहित और परमसुगन्धयुक्त नित्य सरकार के परिकरनिकर

हैं। वे ही सब सेवाओं के अधिकारी हैं अथवा जो उनकी परम्परा धारण किये हुए हैं वे भी श्री अवधबिहारीजी की सेवा के अधिकारी हैं औरों की गिनती नहीं है।

श्रीरघुनन्दनजी तो स्वयं सुगन्ध सम्पन्न हैं और अपने मनोहर अँगों की सुगन्धों से सब पुष्पों को सुगन्धित करते हैं। सुगन्धित माला आदि जो पहिरे हुए हैं वह केवल स्नेहियों की रुचि तथा शोभा के लिये कुछ सुगन्ध की अपेक्षा से नहीं। असंख्य प्रकार के फूलों की सुरभिता क्षण-क्षण में नवल अंगों में छाई रहती है। मन वचन से अगोचर होने के कारण कौन उसका वर्णन कर सकता है? श्रुतियाँ पुरुषोत्तमोत्तम को सर्वरस और सुगन्धमय कहा करती हैं।[1]

यह बात सरकार में स्पष्ट रूप से संघटित होती है। रसिक लोग भ्रमर के समान उस रूप के रस का दिन रात आस्वादन किया करते हैं ऐसे श्रीमहाराज किशोरजी हैं। कुछ विशेष अधिकता है तभी तो श्रीप्राणवल्लभजी के वशीभूत होकर उसके अंगों पर लुब्ध रहा करते हैं।

इस सुगन्धगुण के अनुसन्धान का यही परम सार स्वादु अनुसन्धान करने वालों को मिलता है कि सभी प्राकृत पदार्थों में अति दुर्गन्ध मालूम होने लगती है और सरकारके सुगन्धित अंगों को देखने की चाह और उत्साह अनुक्षण बढ़ता रहता है।

❀ दोहा ❀

सहज सुगन्ध अनूपम अङ्गन अमल हमेस।
युगलानन्य समस्त जग, ठग दुर्गन्ध अशेस ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण विरचिते हिन्दीभाषावार्तिक प्रबन्धे श्रीरघुबरगुणदर्पणे सौगन्धगुणप्रदर्शनं नाम एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः।३१॥

---

1 'सर्वगन्धः सर्वरसः' श्रुति कहती हैं प्रभु सभी गन्धों एवं रसों की खानि हैं।

अब कोमल-मनहरणवेश रसेश श्रीकोशलेशजी की सुकुमारता का वर्णन किया जाता है। श्रीरघुनन्दनजी की सुकुमारता अनूठी है। जिसका वर्णन करने को शिवादि भी समर्थ नहीं तो हम सरीखे कठोर मति वालों से कहाँ तक निरूपण हो सकता है? पर कहे बिना सन्तोष नहीं होता अतः मति के अनुसार वर्णन करता हूँ। श्रीप्राण-प्यारेजी की सुकुमारता ऐसी है कि जैसे फूलों का फूलना-विकसित होना। फिर ऐसी है कि जिसके सामने किसी ऋतु के कुसुम भी कठोर हो जाते हैं तथा उसके आगे सभी प्रकार की मृदुलता न्योछा-वर होती है।

श्रीलक्ष्मणादि तथा अलीगण निज निज समयानुसार जब पदपंकज स्पर्श करती हैं तब अतीव संकोच को प्राप्त होती हैं कि कहाँ मेरी कठोरता और कहाँ इन अंगों की कोमलता? युगल सर-कार की रसमयी मूर्ति शुद्ध सच्चिदानन्दघन रूप है। प्रकृतिरूपी अविद्या का सम्बन्ध तो उसमें रञ्चक भी नहीं है। जो युद्ध आदि में कठोरता का आभास होता है वह वास्तविक नहीं जानना। केवल आपके स्वतन्त्र संकल्प से राक्षसादि की हानि होती आई है युद्धादि तो लीलामात्र है। आपमें वीररस बहुधा पाया जाता है जिससे युद्धादि उचित ही है किन्तु उससे कठोरता नहीं सिद्ध होती। आपका अन्तःकरण भी अति कोमल है, तभी तो सभी पर आपकी दयालुता बनी रहती है।

श्रीकोशलेश कुमारजी के सुकुमारगुण के अनुसन्धान करने वाले को अनन्त फलों का लाभ होता है। तथापि दो एक वस्तुओं का वर्णन करते हैं यह जो संशय था कि जैसे सब जीव कर्कश कठोर हैं वैसा कठोर मेरा परम इष्टतम तो नहीं है? यह शंका इस सुकुमारतागुण के अनुसन्धान से दूर हुई। जैसे सुराज्य होने

से चौरादि भय नष्ट हो जाते हैं और मन वचन में कोमल द्रवीभाव उत्पन्न होता है यही परम लाभ विशेष है।

कोमल कल कमनीय कर, पदवर वचन समस्त ।
युगलानन्य विचारि हिय, करु भवभीति निरस्त ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण विरचिते हिन्दी भाषा वार्तिक प्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे सुकुमारगुणवर्णनं नाम द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३२॥

अब श्रीकौशल्यानन्दवर्द्धनजी के सहज सुहावन मनभावन सुवेष गुण का यथामति निरूपण किया जाता है। ध्येय श्रीजानकी वल्लभजी के अनूप स्वरूप की रचना को अनूठी भाँति से कहने के लिये शारदा शेष आदि की मति भी भ्रमरी सी भरमती रहती है। औरों की क्या शक्ति है कि कह सके तथापि श्रीकौशलेश सुतजी की सुवेषता सबों की मनोहारिणी होने के कारण बिना कुछ कहे नहीं रहा जाता। अतर आदि सुगन्धों से तर कोमलतर मेचक सघन सुकुमार शतमारजित् ललित घुंघुरवाले सब भाँति से सँवारे रसिकनयन सचिक्कन जो झलकारी अलकें श्रीवदनारविन्द पर अनूठी रीति से शोभित हैं उनकी सुषमा को निहार कर रति रमा आदि के मन नयन हरण हो जाते हैं औरों की क्या कही जाय ? श्रीपूषणवंशावतंसजी ने नख से शिखापर्यन्त जो मधुर मनोहर अदूषण भूषण धारण किये हैं वे मानो सौन्दर्य सागर रूपी अङ्गों के तरंग सरीखे भासते हैं और यह जान पड़ता है कि अति अनुरागियों के अनुरागी चित्त ही यथाधिकार स्वरुचि अनुसार शोभित हैं।

हे श्रीरघुनन्दनजी ! आपके मञ्जुपदकञ्जमें स्थित अनेक रत्न जटित नूपुरादि भूषण विविध भावों को उत्पन्न करते हैं और सुन्दर मधुरनाद से वीणा सह कोकिलादि सबों को लज्जित

करते हैं और अत्यन्त रंगीले रसीले परिकरनिकर (पार्षद परिकर-गण) के अनूप जीवनरूप हैं। प्यारे रंग का अनुपम पीताम्बर सब रसों की खान धारण किये हैं। जिसकी प्रतिभा के प्रतिबिम्ब से अनेक दामिनी चम्पक और तप्तहाटक की द्युति भी तुच्छाति-तुच्छ हो जाती है स्वच्छता तो स्फटिक मणियों को लजाने वाली है जो श्रीश्यामघन में अत्यन्त शोभित होती है। मधुर उर मध्य में असंख्य प्रकार के पुष्पों से रचित और मणियों से खचित ललित वैजयन्ती माला और पुष्पमालाएं सुशोभित हैं। जिनमें सुरभिता—सुगन्ध अत्यन्त पाई जाती है और रसिकजन मन-मधुप अन्य सब रसों को छोड़ इन्हीं का रसास्वादन करते हैं। उरनिकेत में उपेत मधुरशब्द समेत परमदीप्त छविसार मुक्ताहार की सुन्दरता देख समस्त ग्रहों के सदन जो शिशुमारचक्र वह भी अधोमुख हो आकाश में चला गया है। श्रीकोशलेशनन्दनजी के नित्यद्युति भरण मनहरण नासामणि को देख शशि रवि सभी विकल हो जाते हैं। श्रीछविनिधिजी अपनी बरछी सी तिरछी चितचोर दृगकोर की चितवन से सबके मन और नयनों को जीत लेते हैं। जनसुखखान आपकी मन्द-मन्द मुस्कान से सहज ही में सब लोग अनायास वशीभूत हो जाते हैं। कटिमध्य राजित क्षुद्र-घंटिका ने अपनी सुवेषता से शेषनाग को लज्जित किया है। काम बाण के मोहन कल रमणीय कमनीय लोल कुण्डलयुगल, अपनी लोलता से श्रीशंकरादि की समाधि को भी चञ्चल करते हैं। सुभग भुजाओं में विविध रचनायुक्त बाजूबन्द बिजायठ ताबीज आदि अत्यन्त शोभित हैं। विविध रचनायुक्त नवीन पारिजात के कुसुमपाँखुरीसम मधुर मृदुतर अँगुलियों में मणि जटित ललित मुद्रिकाएँ अपनी चन्द्रिका से उपासकों के मन का तम नाश कर देती हैं। दाँतों की पाँती और बिम्बसदृश अधर अनुपम वदनकंज में मिलकर

शोभित होते हैं। किरीट ताज और सुरंग पाग आदि शिरोभूषण अनेक भाँति के हैं। अंगा (जामा) भी अंगों पर ऋतु अनुसार अनेक भाँति से शोभते हैं। इस प्रकार से रंग-रंग के अनमोल वस्त्र भूषण आप धारण किये हुए हैं। जिस सुवेषगुण को श्री-भरतजी ने श्रीअवधकांड में जहाँ तहाँ विशेषरूप से वर्णन किया है। श्रीवाल्मीकीय में जहाँ रूप कला विद्याविषय की उपमा गन्धर्व-राज की दी हुई है वह केवल सुमेरु की सूचना के लिए तिलमात्र सुवर्ण दिखाने के समान है। इनके समान यही हैं, यह अनुपम हैं किसकी उपमा दी जावे ? प्राणप्यारे जानकीजीवनजी इस प्रकार सन्तत विहारासक्त रहा करते हैं।

इस सुवेषगुण के अनुसन्धान से रूपमाधुरी के बिलोकन में अति अभिलाषरूपी लाखों प्रकार के लाभ हुए !

सुभग सुवेष असेष गुन, गर्भित गुरु गम्भीर ।
युगलानन्य सनेह सह, करु विचार धरि धीर ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण विरचिते हिन्दी-भाषा वार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे सुवेषगुणवर्णनं नाम त्रयस्त्रिशोऽध्यायः ॥३३॥

अब छविसागर नवनागरजी के लावण्य गुण का वर्णन किया जाता है। श्रीरसिकेश्वरजी का लावण्य इस प्रकार का है जैसे मनोहर मोती के भीतर अत्यन्त तरलत्व झलक देख पड़े वैसे ही आपके नवीन अङ्गोंमें जो छटा अनुक्षण झिलमिलाती रहती है वही श्रीकिशोरी-प्राणवल्लभजी का लावण्य है। यह भी नवरंग उतंग लावण्य का लक्षण है सब अंगो के प्रतिबिम्ब सब अंगों पर पड़ते हैं। दर्पण से भी कहीं स्वच्छतर वे अंग अनंग को जीतने वाले हैं। जैसे सभी व्यंजन लवण से ही स्वादिष्ट जान पड़ते हैं वैसे ही अंगों की रुचिरता सुन्दरता लावण्य-लोनाई रहने से ही खुलती है अर्थात् वे लोने-सलोने जान पड़ते हैं। सभी परिकर प्रत्यंग में एकटकी लगाये रहते हैं परन्तु

क्षणक्षण में छवि दूसरी ही भाँति की देख पड़ती है। यद्यपि देखे असंख्य कल्प बीत जाते हैं किन्तु सब परिकरों को यह जान पड़ता है कि अभी देखा है। ऐसी लुनाई अन्यत्र रञ्चक भी नहीं पाई जाती क्योंकि श्री युगल सरकार के अङ्ग अति अद्भुत हैं इसके आगे औरों की क्या गिनती ? ये सरकार अपनी माधुर्यमयी मूर्ति को निहार कर आप ही विस्मित होते हैं क्योंकि यह लुनाई और मधुराई की सीमा है।[1]

यहाँ यह तात्पर्य है कि भजन सेवा श्री रघुनाथ जी की जिसमें हो भाग्यवान् हैं ऐसे भाग्यवान् सन्त रसवन्त हैं। क्योंकि उन्हें परमेश की सेवारूपी धन का लाभ प्राप्त है। दोनों-लोक परलोक भाग्यों को त्याग कर उनके स्वामी के भाग्य में इनका भी भाग्य मिला है। वास्तव में भाग्य तो यही है कि जगदाकार वृत्ति को त्याग कर भी प्राणजीवन का स्मरण भजन निरन्तर हो इस लाभ का अर्थ सिद्धान्त-मय है। श्रुति स्मृति रामायण आदि में इसी भाग्य का विस्तृत वर्णन है। भग नाम योनि का भी हैं जो लोक में नारी के अङ्ग विशेष को भी लोग कहते हैं किन्तु शास्त्र में योनि शब्द कारण वाचक है-शास्त्र योनित्वात्। तत्व के निर्णय में एकमात्र शास्त्र ही प्रमाण है श्रीवेदव्यास जी के वेदान्त सूत्र में इसका विशद विवेचन है। महत् तत्त्व आदि समुदाय को भी भग कहते हैं वह जिसमें होय अर्थात् कार्य एवं कारण दोनों जिसमें होय वह भगवान् है। भगवान् तथा भाग्यवान् का एक ही अर्थ है, भग शब्दऐश्वर्य का नाम भी है। स्वल्प अथवा अधिक ऐश्वर्यवान् वस्तु जिसमें हो वह भाग्यवान् है। जगद्वन्द्यवन्दन श्री रघुनन्दन जी सनातन

1 दृष्ट्वातिरम्यं निजरूपमद्भुतं शिलातले काञ्चनपीठ निर्मले।
मुमोह रामो रघुवंशभूषणः सीतेव स्वालिंगनभावमश्नुते ॥
रूपरासि नृप अजिर बिहारी। नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी ॥

परात्पर भाग्ययुक्त हैं । निर्विकार चिदाकार सकल सुखदाता भव भयहारी परम रक्षक स्नेहसागर सुकुमार धैर्य उदार अपार गुन मण्डित परम पण्डित कुशल शिरोमणि श्री रघुनन्दनजी ही भजन पूजन स्मरण एवं भावना आदि करने योग्य हैं क्योंकि समस्त सद्गुणों के आश्रय हैं । महर्षि श्रीवाल्मीकिजी ने श्रीमद्रामायण में स्पष्ट रूप से श्रीभरतराजनन्दनजी के द्वारा यह वर्णन किया है कि श्री राजेश्वर प्राणवल्लभ जी के साधारण सेवक भी सुधा से सरस स्वादमय पदार्थों का उपभोग करते हैं । इस प्रकार श्रीमहाराज कुमार जी भाग्यवान् हैं । सब कोई जिससे स्नेह करें वही परम भाग्यवान् है उनसे युक्त श्रीरघुवीर धीर गम्भीर जी हैं, और कौन है ?

टिप्पणी

जब श्री भरतजी शृङ्गवेरपुर पधारे तथा श्री निषादराज से मिले तब श्री भरतजी को श्री निषादराज ने उस स्थान को दिखलाया जहाँ श्रीसीतारामजी ने वन जाते समय शयन किया था । श्रीभरतजी उस स्थान को तथा श्रीसीताराम जी की तृण शय्या को देखकर अत्यन्त दुखी होकर माताओं से कहने लगे—

परम भाग्यवान् कुलीन तथा बुद्धिशाली महाराज श्री दशरथजी से उत्पन्न होकर श्री राघवेन्द्र ने पृथ्वी पर शयन किया यह अत्यन्त अनुचित हुआ । जो श्री रामभद्र सर्वदा राजाओं के शयन योग्य केले आदि के कोमल रेशे के बने हुये अत्यन्त कोमल बिछौने से युक्त शय्या पर शयन करते रहे हैं वे भला, किस प्रकार भूमि पर शयन करते होंगे ?[1]

---

1 महाभाग कुलीनेन महाभागेन धीमता ।
जातो दशरथेनोर्व्यां न रामः स्वप्तुमर्हति ।।

अजिनोत्तरसंस्तीर्णे वरास्तरण संवृते ।
शयित्वा पुरुषव्याघ्रः कथं शेते महीतले ।।

श्री अवध में जिस राजमहल में प्रभु शयन करते हैं वह राजभवन सात खण्ड के विमान के समान है उस भवन की भूमि सोने चाँदी की बनी हुई है। उनमें अत्यन्त सुन्दर रंग बिरंग के ऊनी गलीचे बिछे हुये हैं। जिस पर पुष्पों की चित्र विचित्र रचनायें की जाती हैं तथा जो शयनगृह चन्दन तथा अगर की सुगन्ध से सुवासित है, जो श्वेत बादल की भाँति दीख पड़ता है। जहाँ पर शुक सारिका आदि भाँति-भाँति के पक्षीगण मधुर कलरव करते रहते हैं। वह समस्त राजभवनों में श्रेष्ठ है। वहाँ पर आवश्यकता-नुसार शीतलता पहुंचाई जा सकती है। अर्थात् समय-समय पर ऋतुओं के अनुकूल वातावरण बना रहता है तथा जिसमें सदा शीतल मन्द सुगन्ध पवन का सञ्चार होता रहता है। जिसकी ऊँची दीवारें सोने चाँदी के कामों से खचित होने के कारण मेरु पर्वत की भाँति प्रतीत होती है। ऐसे सर्वश्रेष्ठ शयनकुञ्ज में श्री जानकीवल्लभजी शयन करते हैं। प्रातःकाल वीणा मृदङ्ग आदि मधुर वाद्यों के शब्दों से, मधुर गीतों से तथा सुन्दर परिचारि-काओं के कंकण किंकिणी नूपुर आदि भूषणों के छुम-छुम शब्दों से श्री जानकीरमणजी जगाये जाते हैं।

जागने के पश्चात सूत मागध बन्दीगण अनेक प्रकार की गौरवमयी गुणगाथाओं से प्रभु की स्तुति करते हैं। ऐसे दिव्य भोगों का उपभोग करने वाले प्रभु पृथ्वी पर तृण शय्या पर शयन कर रहे हैं ऐसा विश्वास नहीं होता है। इसकी कल्पनामात्र से मुझको भ्रम होने लगता है तथा स्वप्न की भाँति प्रतीत होता है।

इस गुण के अनुसन्धान से चित्त की निर्मलता तथा अँगों में रुचि सुचितारूपी परम फल प्राप्त हुआ।

ललित लुनाई लाल अँग, छाई छबि छन संग।
युगलानन्य प्रसन्न ह्वै, रमु एहि मधि सोमंग ॥

इति श्री युगलानन्यशरण विरचिते हिन्दी भाषा वार्तिक प्रबन्धे श्री रघुवरगुणदर्पणे लावण्यगुणप्रदर्शनं नाम चतुस्त्रिशोऽध्याय: ॥३४॥

अब श्री प्राणवल्लभ महाराजेश्वरजी के संहनन गुण का निरूपण किया जाता है। संहनन नाम शरीर का है। जिनके शरीर में अत्यन्त अनुपम बल और विलक्षण प्रौढ़ता है। ऐसे श्री रघुवीरजी से बड़े बड़े मल्ल–पहलवान वा योद्धा भी हार जाते हैं। विशेष गुण यह कि आप आर्तों का त्राण कर उसकी रक्षा करने वाले हैं क्योंकि सरकार में अत्यन्त बलिष्ठता है। सरकार के समस्त अँग अति सचिक्कण वर्ण विकारादि रहित और सुषमा सहित हैं। श्री राघवेन्द्रकुमारजी के अमल अँगों पर मशक भी नहीं ठहर सकता, ऐसे वे सर्वदा स्निग्ध है। ऐसे उनके अँगों को देख–देख सभी परिकर उन पर तन मन धन न्योछावर करते हैं। ऐसे श्री जानकीवल्लभजी आपके गुणों का श्रीमद्वाल्मीकि आदि महा–कवियों ने भलीभाँति वर्णन किया है, पर वे भी नेति-नेति कहते हैं हम सब क्या वर्णन कर सकेंगे ?

इस गुण के अनुसन्धान से स्वामी के बल के बल से अति–निःशङ्कतारूपी परम लाभ प्राप्त होता है।

सुठि संहनन सोहाव सर, जल अगाध अति जानु।
नेही मीन हमेस ही, मगन न विलग पिछानु ॥

इति श्री युगलानन्यशरण विरचिते हिन्दीभाषा वार्तिकप्रबन्धे श्री रघुवरगुणदर्पणे संहननगुणप्रदर्शनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्याय: ॥३५॥

अब रंगरसबोर चित्तचोर श्री राजकिशोरजी का अभिनव यौवन गुण निरूपण किया जाता है। हे श्री जानकीरसरसिकजी !

आपकी किशोरता के वर्णन के समय श्री शारदाजी के बदन से भी लार चूता है अर्थात् वह भी बहुत लाज को प्राप्त होती है। हमारे सदृश अन्य सामान्य जीव क्या कह सकें? तो भी अपने सुखास्वादन के लिए कुछ कहा जाता है। सच्चिदानन्दमयविग्रह श्यामसुन्दर श्री महाराजकिशोरजी सदा षोडशवर्ष की अवस्था में और सर्वत्र एकरस सम्पन्न रहते हैं। यह रहस्य अति रसज्ञों के हृदय में झलकता है और कौन जान सकता है? यही मूर्ति वात्सल्य रसवालो को बाल्यादि अवस्थाओं के रूप में जान पड़ती है। यह भावमयी मूर्ति है, पर स्वभावतः किशोर ही बनी रहती है यह श्री वाल्मीकिजी ने भी अनेक ठौर कहा है। इस मूर्ति में अवस्थानुरूप ज्ञान वैभव प्रताप मोद सबकी सदा वृद्धि हुआ करती है परन्तु विग्रह (मूर्ति) सदा एकरस किशोर रूप ही रहता है। यह विग्रह देही-देह विभाग रहित शुद्ध चिन्मय नख से शिखापर्यन्त नित्य अखण्ड दण्डायमान और सुखरसखान है। जो अधमाधम कुतर्कवादी परधामप्रयाण-प्रक्रिया में अनुचित मति फैलाते हैं वे अति नीच हैं, वे इसे क्या जानें? इस अति दुर्गम रहस्य की कीर्ति श्री प्रताप सब एकरस हैं। इस पर श्रुति-स्मृति में अमित प्रमाण प्रसिद्ध हैं। ऐसे ही श्रीरघुनन्दनजी की मुखचन्द्रचकोरी श्री राजकिशोरीजी की अवस्था आदि जानना चाहिये। इसी प्रकार और भ्राताओं तथा परिकरगण की भी अवस्थादि जाननी चाहिये, कुछ भेद नहीं सभी अप्राकृत अलौकिक हैं।

इस गुण के अनुसन्धान और विचारसे श्री रघुनन्दनजी के स्वरूप और परस्वरूप की नित्यता किशोरता एकरसता और विलक्षणता का ज्ञानरूपी लाभ हुआ।

अभिनव जीवन नवल नित, षोडश वर्ष किशोर।
सखी सखादिक प्रानधन, युग अनन्य चितचोर॥

इति श्री युगलानन्यशरणविरचिते हिन्दीभाषा वार्तिक प्रबन्धे रघुवरगुणदर्पणे अभिनव यौवन गुण प्रदर्शनं नाम षट्त्रिंशोऽध्याय: ।।३६।।

अब छविजोर श्री कोशलराजकिशोरजी का भाग्यवत्त्व निरूपण किया जाता है। सकल श्रुतिसार सिद्धान्त भ्रान्ततम शान्तकरणहित अदाग-अनुराग सहित परमपरत्व माधुर्यगुणसूचक कमनीयतर भाग्यवत्ता गुण के अनन्त लक्षण हैं। यहाँ संक्षेप में केवल वस्तुमात्र बोध के लिये कुछ लिखे जाते हैं। जिन पुरुषसिंह को देखते ही बिना विचारे ही यह दृढ़मति हो जाय कि यह बड़े भाग्य युक्त और सबों से पर पदार्थ है, इनके समान अपर ईश परेश कोई नहीं। ऐसा भाग्यवत्त्व केवल कृपाल श्री नृपालबालजी में पाया जाता है। जब श्री रघुनन्दनजी बन मार्ग में थे, उस समय सब नीच ऊँच अनुभव करते थे कि यह हरि हैं या हर हैं और बहुत तर्क के पीछे निश्चय करते कि इनके समान अनुपम कोई नहीं है। अत: श्री रघुनन्दनजी स्वाभाविक भाग्यवान लक्षित हुये हैं। औरों में तो भाग्य का आभास रहता है पर श्री चक्रवर्ति-चूड़ामणि प्यारेजी के समान किसका भाग्य है वह बात तो स्पष्ट ही ज्ञात हो जाती है श्री महाराजकुमारजी परत्त्व में भी सर्वेश्वरों के नियन्ता और माधुर्य में भी महाराज कुमार और स्वयं महाराजा-धिराज हैं क्योंकि पिता-पुत्र में अधिक समता होती है (पिता वै जायते पुत्र:) श्री महारानी कौशल्याजी ने भाग्यवानों में परमभाग्य-वान् ऐसा पुत्र उत्पन्न किया कि जिनकी भाग्यलक्ष्मी से करोड़ों और असंख्य अभागे जीव भाग्य सम्पन्न हुये होते हैं और होंगे।

यदि पुत्र होय तो भाग्यवान् होय पण्डित सूर न भी होय तो हानि नहीं क्योंकि सब बातें भाग्यवान् के अनुकूल हो जाया करती हैं। श्रीकुन्तीजी ने श्रीद्रौपदीजी से कहा था कि मेरे सभी

लड़के विद्वान् और शूर हैं किन्तु भाग्यहीन होने से वन में दुःखदावानल से तप रहे हैं।

यह भाग्यवान गुरण का स्वरूप एवं गुरण किस प्रकार है? यह चित्त लगा कर श्रवरण करो।

भाग्य तीन प्रकार का होता है। एक लौकिक, दूसरा अलौकिक और तीसरा परमार्थमय। लौकिक और अलौकिक के अनेक भेद हैं, जो देश कर्म स्वभाव के अनुसार होते हैं। वे अब यहाँ संक्षेप से कहे जाते हैं। लौकिकी भाग्यवत्ता तो स्वल्पपुण्य से उत्पन्न मनुष्यादिकों की होती है। वह अनेक दुःखों से भरी हुई और अल्पकाल रहने वाली होती है अलौकिकी भाग्यवत्ता पुण्यचय से प्राप्त है वह देवादिकों में पायी जाती है, परन्तु वह भी चार दिनों की चाँदनी सी हो जाती है। अतः ये दोनों प्रकार के भाग्य विवेकियों से हेय हैं। तीसरी भाग्यवत्ता नित्यमुक्त सरकारी परिकर और स्वयं सरकार में पायी जाती हैं। वह भाग्यवत्ता नित्या स्थिरा निर्मला प्रकाशमयी चिन्मयी और मोद विनोदमयी है। श्रीरघुनन्दनजी के स्नेहियों को भी वही विलक्षरण भाग्य तीन प्रकार से सुलभता के साथ प्राप्त होता है। अर्थात् नवधा दशधा या पराभक्ति, उपायशून्य शररणागति और श्रीजानकीवल्लभ जी की प्रसन्नता, इन्ही तीनों काररणों से वह तीन भाग्य मिलता है इसमें सन्देह नहीं। इस भाग्य की फिर कुछ अवधि नहीं रहती। सरकार परम अनवधि हैं और औरों के अवधि हैं।

व्याकररणशास्त्र में कहा हुआ भज् धातु सेवार्थक है उसी से भक्तिपद बनता है और भग शब्द भी प्रत्ययभेद से उसी धातु से सिद्ध होता है। वास्तविक अर्थ दोनों का एक ही है। इसी प्रकार से भक्ति और भग शब्द के साथ भी भिन्न भिन्न प्रत्ययसम्बन्ध से अनेक शब्द और अनेक अर्थ हो जाते हैं यहाँ यह तात्पर्य है।

अतर फुलेल आदि सुगन्ध, अनन्त वनिता, अमित वसन, अमित भूषण, गानतान सम्पत्ति, भोजन, ताम्बूल और सब प्रकार के सुन्दर वाहन ये आठ भोग्य पदार्थ होते हैं। [1]इनको भी भाग्य कहते हैं किन्तु यदि वे सदा एकरस और अनामय हों क्योंकि दो दिनों का भोग्य भोग तो शोक वा रोग सा दुःखजनक होता है। ऐसे भाग्य से परम सम्पन्न तो श्रीरघुवीरजी ही हैं क्योंकि सभी भोग्य इनके सन्तत और ताजे पाये जाते हैं। कोश में भग नाम भाग्य का है। वही दैव कहलाता है जो अदृश्य है परन्तु विवेकीजन अनुमान से ज्ञान कर लेते हैं। श्री आदिकवि ने श्रीरघुनाथजी का भाग्य श्री-भरतजी के सुखसदंन वदन द्वारा सर्वोत्तम कहा है। आठों भोग्यों के प्रमाणों को अनुमान से निश्चित करना चाहिए।

श्री महाराजकुमारजी निरन्तर दुग्ध फेनसम स्वच्छ मनहरण आस्तरण और अनेक गिलम गलीचे पर शयनकुञ्ज में शयन करते हैं। जहाँ ठौर ठौर विचित्र रचनायुक्त बेलि बूटों से रंगदार छविकार चित्र-कारीयुक्त और भाव रसादि प्रतिकूलता रहित सकल ऋतु अनुकूल जगमग असंख्य मणिगण मण्डित अतर आदि सुगन्धों से सिक्त चहल-पहलमय अनेकों महल हैं। वहाँ मनोजमोहन मधुर सुहावन शुक सारिका मयूरादि शब्द, गान तान तथा नायिकागणभूषणनिनाद होते रहते है। वहाँ सरकार अनेक रागिनी और वीणादि यन्त्रों के मधुर मुखर शब्दों से जागते हैं। उसी प्रकार सोते समय बहार के साथ सोते हैं। उस समय करोड़ों नायिकाएँ करारविन्दों से पदकञ्ज सेवती हैं। यह आनन्दसन्दोह सर्वदा भरपूर रहा करता है। उस समय सूत मागध, बन्दी सभी अनेक काव्यों से प्रशंसा और वंशवर्णन निरन्तर किया करते हैं। ऐसे भाग्यवान् हमारे स्वामी भ्रातास्नेही सखा और

---

1 सुगन्धं वनिता वस्त्रं गीतं ताम्बूल भोजनम्।
भूषणं वाहनं चैव भोगाष्टकमुदीरितम् ॥

प्राणधन हैं। यह बात श्री अवधकाण्ड में श्रीभरतजी ने कही है, इसीसे सब भोग्य समुदाय की सूचना हो गई। श्री महाराज दशरथ-राजजी ने भी कहा कि मेरे जीवनधन श्रीरघुनन्दनजी सन्तत विचित्र भूषणादि भूषित हरिचन्दन, कुँकुम, कस्तूरी से लेपितांग और अमित सुकुमारी नारियों से सेवित हैं।

उक्त श्रीमहाराज जी की उक्ति से श्रीरघुकुलेशसूनूजी का दक्षिणनायकत्व सूचित होता है क्योंकि श्रीवाल्मीकि जी ने भी कहा है कि सहस्रों नायिकाएँ तथा अपर सभी परिकर प्रसन्न रहते हैं। किसी को किसी प्रकार का खेद नहीं, जिससे श्रीरघुनायकजी दक्षिण-नायक सिद्ध होते हैं। ऐसा सन्देह स्वप्न में भी नहीं करना चाहिये कि श्रीरघुनन्दनजी ने तो एक श्री जानकी जी से ही सम्बन्ध किया है उनकी बहुत स्त्रियाँ कैसे हो सकती हैं? ऐसे ही संदेहकर्ता लोग ग्रंथों को विचारे बिना शोक में पड़कर बड़राया करते हैं। श्री वाल्मीकीय में तो बहुत ठौर सरकार का अनन्तनारी सम्बन्ध लिखा हुआ है। मन्थरा ने श्रीकैकेयीजी से कहा था कि यदि राज्याभिषेक होगा तो श्रीरघुनन्दन की सभी स्वकीया नायिकाएँ हर्षित होंगी और भरतजी की सब पत्नियाँ खेद पावेंगी। इस उक्ति से और भी एक नयी बात मालूम हुई कि श्रीरघुनन्दनजी की कौन कहे श्रीभरतजी की भी अनेक पत्नियाँ हैं।

ऐसे ही श्रीलक्ष्मण और शत्रुघ्नजी की अनेक पत्नियाँ हैं। सर्वशक्ति वंदित पदपंकजपराग श्रीजानकीजी ने श्रीरघुनन्दन जी से रोषामर्ष और घमंड के साथ कहा था कि मुझे छोड़कर आप भयरहित अमित स्त्रियों के साथ बिहार करेंगे। इस वचन से उन्होंने धैर्ययुक्त गम्भीरता धारण की। सागर ने भी प्रार्थना के समय श्री-रघुवर भुजा के अनेक विशेषण देते हुए कहा कि जो बाहु अनेक सुन्दर भूषण बसन शृङ्गारादि सम्पन्न नारीगणों के करकंजों से सेवित था।

इससे जो लोग अपनी अज्ञता से श्रीरघुनन्दन जी में परस्त्री-संग का अनुसंधान करने लगते हैं वह अत्यंत अनुचित है। रघुकुल-कुमुदचन्दन श्रीरघुनन्दन जी तो परस्त्री के करस्पर्श को कुलिश से भी अधिक कठोर मानते हैं। लोक में भी जो धर्मज्ञ हैं वे परनारी का सर्वथा त्याग करते हैं। श्रीरघुनाथजी तो परमप्रशस्य धार्मिकवंश में प्रकट हैं आप धर्म के कारण हैं सब प्रकार से धर्म मर्यादामय हैं तो आपका पामर वा परायी स्त्रियों से स्पर्श नहीं कहा जा सकता। ऐसे कुतर्कों का सम्पर्क भी ठीक नहीं। एक पत्नीव्रत का यह अर्थ है कि एक अर्थात् मुख्य पत्नी का व्रत जिसने धारण किया है। पत्नी ब्याही स्त्री को कहते हैं, जिससे स्वकीया का ग्रहण और परकीया का त्याग सर्वथा श्रुति स्मृति संहिताओं से सम्मत है। श्रीरघुनन्दनजी का परमपरत्व तो माधुर्य ही में पाया जाता है। उदाहरण में देखिये कि केवल पादुका उन्होंने भरतजी को दी थी और कहा कि यही पादुका लोकमात्र का योगक्षेम करेगी। जिनके क्षण मात्र संग से पादुका लोक मात्र के योगक्षेम करने में समर्थ है। जब उनकी पादुका में इतनी शक्ति है तब श्रीकोशलेन्द्रकुमार का क्या कहा जाय ?

जो अधमाधम महामन्दतर श्रीराजीवनयनजी से भिन्न अपर परेश की कल्पना करते हैं वे महा असुर हैं और जो ऐसे महाभाग्यवान में भोग्य पदार्थों की अल्पता कथन करते हैं वे भी वैसे ही हैं। जिनके भोगस्थान श्रीवाल्मीकीय में अपूर्व वर्णन किए गये हैं। सुमन्त्रजी ने श्रीरघुनन्दनजी के ऐसे कनक भवन देखे कि जिनकी अटारी कैलाश से भी उच्च विशेष विचित्र, जिनकी छटा के सामने इन्द्रजी की अमरावती तथा विष्णु आदि के स्थान फीके जान पड़ते हैं। जिनमें सुन्दर मनोहर हरित पीतादि अनेक मणियों के किवाड़ लगे हैं। अनेक प्रकार के छज्जे, अनेक प्रकार के झरोखे

वैसे ही खिड़कियाँ और भी सभी मणिगण अनुपम जड़ाव से जड़े जगमगा रहे हैं। जहाँ मूँगे मोतियों के विविध वितान तन रहे हैं जो चन्दन अगर कस्तूरी अतर आदि से सुगन्धित हैं। जहाँ सारस मयूर शुक पिक आदि पक्षी मनोहर नाद कर रहे हैं, जो कृत्रिम अनेक मृगादि जीवों से परिपूर्ण हैं। जो मन नयन दोनों को सहज ही में हर लेते हैं, जो नारी रत्नों से पूर्ण हैं। जहाँ नाच गान वाद्य हो रहा है, जहाँ तहाँ श्रीरामसहस्र नाम लिखे हुये हैं, जो शङ्करजी ने रुद्रयामल तत्व में कहा है। इस वर्णन से भी परम भोग्यता और भगवत्तागुणमय भोग सूचित हुआ।

श्रीमहाराजनन्दनजी की समस्त कला शीलादि में गुरुता और परम भोग सम्पन्नता है। जिनके किंकर वर्ग भी महामति सम्पन्न हैं उनकी क्या कही जाय। श्रीराजनन्दनजी की धन सम्पत्ति कुबेर से भी असंख्य गुण अधिक है। भोगविलास करोड़ों इन्द्रों से भी अधिक अखण्ड और एकरस है। पालकत्व अनन्त विष्णुसम है, अमित मत्त मातंग ऐरावत कुल को तुच्छ करने वाले उमंग से भरे हुए हैं। रथ गरुड़ की गति को भी तुच्छ करने वाले हैं, अमित मल्ल युद्धोत्साह सहित और ईश्वर से भी अधिक बल प्रताप तेज समेत हैं। अनंत उतंग उछंग तुरंग अपनी गति से उच्चैःश्रवा की भी निन्दा करते हैं। दासियाँ देवकन्याओं से भी सौ करोड़ गुण अधिक रूपगुणवती हैं। सारथी मातलि से भी विशेष चतुरतर हैं। ऐसे अनेक श्रीसम्पन्न चितचोर श्रीराजकिशोरजी सबके मन मति बुद्धि को रमाने वाले हैं। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में श्रीअशोक वनिका वर्णन में भी सब भोग लिखे हुये हैं।

रूपगुणविभूति से भरी अमित अप्सरा किन्नरी विद्याधरादि कन्यायें और भी अनेक वनितागण रसपान में मत्त हो श्रीजानकी जीवनजी के आगे अनुराग भरी नृत्य करती हैं। सबों को प्राण

वल्लभ श्रीमहाराजकुमारजी भलीभाँति से रमाते हैं।[1] श्रीब्रह्म रहस्य के रामसहस्रनाम में भी लिखा है कि श्रीरघुनन्दनजी महा-रासोत्साह के आनन्द से पूर्ण हैं। अनन्त अनंग छविधारी हैं सुभग ताण्डवादि नृत्य भेद में चतुर शिरोमणि हैं। सुन्दर मालादि भूषण सम्पन्न हैं बीन के बजाने में परमप्रवीण और नवीन हैं। स्नेहियों के स्नेह निर्वाहक गुणवाहक हैं। भगशब्द के भक्ति, भाग्य ऐश्वर्य, सौभाग्यादि अनेक अर्थ हैं। वे सभी गुण मंगलमय गुणगण सम्पन्न भुवनभूषण श्रीराजेश्वरसूनुजी में हैं और किसी में नहीं।

छह गुण जिनमें पूर्ण हों वह भगवान कहलाता है। वे प्रकट न हों तो भी अंशकलाविभूतियुक्त पुरुषोत्तम भगवान् ही कहलाते हैं। ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, वैराग्य, मोक्ष ये छः गुण सम्पूर्ण केवल श्रीजानकीजीवनजी के आश्रित हैं, और भी पोषण, भरण आधा-रत्व शरणत्व, सकारणत्व और कारुण्यत्व ये छः गुण श्रीरामभद्रजी में पाये जाते हैं और भी छः गुण हैं जो अङ्गाङ्गी भाव से प्राप्त होते हैं। यथा—उत्पत्ति प्रलय, भूतों की गति, अगति, विद्या और अविद्या का ज्ञान ये अंगभूत गुण हैं। श्रुतियों ने भी कहा है कि जो राजाधिराज हैं वे ही सर्वेश्वर हैं। यह बात केवल श्रीराज-किशोरजी में ही श्री वाल्मीकीय तथा अन्य संहितादिकों के सिद्धान्त से जान पड़ती है। अतः सर्वेश्वरत्व इन्हीं में हैं और सब अंश कला और विभूति हैं। भग शब्द का अर्थ सब प्रकार से केवल सरकार सुखसार श्री महाराजकुमार में पाया जाता है।

---

1 उपानृत्यंश्च राजानं नृत्य गीत विशारदाः।
बालाश्च रूपवत्यश्च स्त्रियः पानवशानुगाः॥
मनोभिरामा रामास्ता रामो रमयतां वरः।
रमयामास धर्मात्मा नित्यं परम भूषितः॥
(वा० रा० ७।४२।२०-२१)

सब प्रमाणों से यही स्पष्ट होता है कि श्रीजानकीवल्लभजी सौभाग्य, यश, दिव्यगुण, महत्व विभूति, स्तोतव्य, कमनीयता, शोभा, दाम्पत्य, गृहस्थत्व, द्रष्टव्य, समस्त सिद्धि मंगल, शील विद्या विनोद, प्रमोद, रसादि असंख्य पदार्थों की सीमा हैं। ऐसा और कोई है? इनको साक्षात् सर्वेश्वरी श्रीजानकीजी ने परम मधुर मनहरण कान्त विचार कर वरण किया है यही सर्वोपरि है। श्रीराघवजी के भाग्यवत्ता गुण को श्री ब्रह्मा विष्णु आदि भी नहीं कह सकते हैं तो हमारे समान पामरों से क्या कहा जायगा।

इस गुण के अनुसन्धान से अनेक प्रकार के लाभ हैं। परन्तु विशेष लाभ यह कि श्रुतियाँ जिन को निर्गुण, निराकार, निर्विशेष, निरंजन, निरीह निश्चल, निरालम्ब, निर्वाण, शान्त, मानातीत अनाश्रय, शुद्ध, बुद्ध, प्रकाशमात्र इच्छा रहित उदासीन, अभोक्ता, अखण्ड चिदानन्द शोभा रहित, स्वाद सुषमा रहित, स्थान रहित, निर्विकार व्यापक, परब्रह्म, परतेज और परात्पर कहती हैं। वह कुछ और ही है क्योंकि श्रुति के उक्त समस्त पद प्राकृतिक सम्बन्ध को निराकरण करने वाले हैं और निराकारादि पद आकारहीन के वाचक हैं ऐसा स्वप्न में भी नहीं समझना चाहिए क्योंकि ऐसा विचारना अज्ञों का कुतर्क है। प्रेम के विरोधी ज्ञान वैराग्य योग आदि सभी हेय हैं। कुतर्कवादी पाखण्डियों का और विजातियों का संग कदापि कर्तव्य नहीं हैं क्योंकि उनके संग का रंग प्रियतम के मिलन की उमंग को न्यून कर देता है। उनके भजन से सब फलों का लाभ होता है और चित्त से मत मतान्तरों का तिरस्कार होता है। सर्वोपरि बड़ा लाभ यह है कि सरकार के माधुर्य में मन का लगना और पग जाना। जिन अधमाधम नीचों को श्रीमहाराजसुनू के गुणगणों में स्नेह न हुआ वे बड़े अभागियों के शिरोमणि हैं।

❀ दोहा ❀

भव्य भावना भक्तिजुत भाग्यवत्ता गुनसार।
युगलानन्य हिये सदा प्रीतम सगुन अधार॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण विरचिते हिन्दी भाषा वार्तिक प्रबन्धे सारसिद्धांते श्रीरघुवरगुणदर्पणे भाग्यवत्व गुणनिरुपणं नाम सप्तत्रिंशोध्याय: ॥३७॥

अब श्री स्नेह सागर तथा परम प्यारे परिकरों के परस्पर विलक्षण अनुराग का निरूपण किया जाता है श्री रघुनन्दन तथा उनके सम्बन्धियों के जो रंगमय उत्तरोत्तर स्नेहाधिक्य है वही परम अनुराग है। ऐसे अनुराग के बीज पहले दो प्रकार से उत्पन्न होते एक तो गुणगणों के श्रवण से दूसरे अवलोकन ही से, वही राग है। राग किसे कहते हैं वह सुनिये:—

श्रीरघुनन्दन तथा स्नेहियों के रूप गुण रस यशसुख सभीपरस्पर मन में दृढ़तर हो जावे यही राग है। यही राग जो अत्यन्त श्रवण मनन से बढ़ा हुआ हो उसे अनुराग कहते हैं। वह परस्पर वज्रसारसम दृढ़ अचल और एकरस होता है। वियोग होने से ऐसा अनुराग नित्य स्वरूप में भी दुसह दुःख उत्पन्न करता है। श्रीरघुनन्दनजी ने केवल नित्यता से देह धारण किया। ऐसा न होता तो श्री भरतादिकों का वियोग आप को अत्यन्त कठिन जान पड़ता। परम विहारी श्री रघुनन्दनजी समस्त लोकों के क्षेमकारी और स्नेह के अत्यन्त वश्य रहते हैं। इतना कि किंकर से भी न्यून हो जाते हैं यह श्रीभक्तमालादि ग्रन्थों में कथाओं द्वारा प्रसिद्ध है श्रीरघुनन्दन-जी के सच्चे स्नेही अपने नेत्रों में श्याम मणिमयी लाल की मूर्ति को चश्मे के समान लगाये रहते हैं श्याम के सिवा और रंग नहीं दीख पड़ता जैसी मणि वैसा ही दीख पड़ता है। उनके निकट राग द्वेषमय नानात्व दृष्टि का सहज ही में अभाव हो जाता है।

इस प्रकार से जब चित्त अनुरागी हो जाता है तब अन्ध बधिर मूक और जड़ उन्मत्त सी दशा हो जाती है। श्रीरघुनन्दनजी के राज्य में. सभी रामाकार हो गए ।[1]

मारीच ने भी ऐसा ही कहा कि हमें पत्र खड़खड़ाने में भी केवल श्रीमहाराजकुमार ही दिखाई पड़ते हैं दूसरा नहीं ।[2]

श्रीकोशलेशकुमारजी के गुण सुनते-सुनते और मनन करते-करते जिनके मन वचन कर्म तदाकार हो जाते हैं। मन से दूसरा रूप गुण नहीं आता, वाणी से दूसरी बात आप ही आप उच्चरित नहीं होती और देह से दूसरी चेष्टा नही होती ऐसे ही बड़भागी अनुरागियों के वश में श्रीप्राणवल्लभजी सदैव रहा करते हैं।

यही अनुराग प्रतिकूलों में भय सम्पन्न होता है और कहीं दूसरी भाँति से भी होता है जैसे काम से । कोशलखंड के अनुसार प्रीति से गोपी, भय से मारीच, द्वेष से रावणादि, सम्बन्ध से रघुवंशी, स्नेह भक्ति से सभी भक्त तादात्म्यभाव को प्राप्त हुए। श्रीहनुमान्जी ने यह वर माँगा कि हे वीर ! हे राजन् ! हेस्नेह-पाल ! हमे यही वर मिले कि स्नेह भक्ति भाव प्रीति अनुराग सब आप में दृढ़ होवे, अन्यत्र स्वप्न में कभी न जावे । क्या ही विलक्षणता अनुराग की है कि प्रत्यक्ष श्रीसरकार से भी यही माँगते हैं कि अनुराग और गुणों का श्रवण मिले। इससे सार सिद्धान्त यही हुआ और तो नट का तमाशा सा

1 रामो रामो राम इति जनानामभवन्कथाः ।
रामभूतं जगदभूद् रामे राज्यं प्रशासति ॥
(वा० रा० ६।१३१।९८)

2 वृक्षे वृक्षे च पश्यामि चीर कृष्णाजिनाम्बरम् ।
गृहीत धनुषं रामं पाशहस्तमिवान्तकम् ॥

है। इसके सामने मोक्ष भी तुच्छ जान पड़ता है और की कौन बात है।

उक्त अनुराग अधिकारियों के उत्तम मध्यम अधम के भेद से अनेक प्रकार का होता है। स्वच्छ जल में जैसा रंग मिलता है वैसा ही देख पड़ता है। जैसे स्वच्छ स्फटिक में नाना रंग का प्रतिबिम्ब, और भी जैसे एक ही जल अनेक वृक्षों में जाता है पर नाना बीजों के अनुसार नाना फल उत्पन्न होते है। अब जैसा रंग होता है उसकी गणना करते हैं—उत्तम स्नेहियों का तो मजीठ और कसीस के रंग सा अनुराग होता है क्योंकि मजीठ का रंग पक्का और सुन्दर लाल होता है। किसी का अनुराग काष्ठजनित पतंग के समान स्वल्पकाल स्थायी होता है। किसी का हल्दी के रंग सा होता है, जो पहले सुन्दर पीछे दो ही दिनों में कुछ नहीं। ऐसा ही कुसुम रंग सा भी जानना चाहिए, यह मध्यम स्नेह है। किसी के अनुराग केसर वा हरताल के रंग से होते हैं ये भी अच्छे हैं। किसी का गेरू के रंग सा, किसी का अंगार के रंग सा, किसी का पलाश के रंग सा, किसी का बन्धूक (दुपहरिया) के कुसुम सा, किसी का अड़हुल सा किसी का गुलाब सा, किसी का हरिश्रृंगार सा, किसी का अनार कुसुम सा, किसी का कोकनद सा, किसी का कुमुद सा, किसी का अतसीसुमन सा, किसी का विष्णुकान्ता सा, किसी का मयूरकण्ठ सा, किसी का श्यामघन सा किसी का एरण्डकली सा, किसी का कपास रंग सा, किसी का शीशम सा, किसी का आलता (जावक) सा, किसी का मूंगा सा, किसी का हीरा सा, किसी का मोती सा, किसी का तप्तहाटक सा, ऐसे ही अनेक रंग के अनुराग होते हैं। सब कहने में कोई समर्थ नहीं, पर थोड़ा वर्णन कर दिया गया।

आप श्री जानकीजीवन जी हरितमणि-आभा के हरण करने वाले परम मधुराकार सुखसागर हैं। जिस रंग का जो अनुरागी रहता है उसको आप उसी के अनुसार देख पड़ते हैं; यह आपकी अत्यन्त विचित्रता है। सभी अनुरागी आपके रंग में रंगे हैं सभी प्रकार से सबके जीवन आप ही हैं। समस्त स्वाद-सौख्यदाता, सर्वसद्गुणनिधान, सबसे अधिक परम प्रेमी, सब प्रकार से सबका मन रंजित करते हैं, जो सबका मन रंजित करे वही राजा है ऐसे लक्षण वाले आपही हैं। आप अपने सत्यगुण से लोकमात्र को, दान से दीनों को, सेवासे गुरुओं को, धनुष से वीरों और शत्रुओं को वश करते हैं। ऐसा कोई नहीं जिसको आप अपने रूप वा गुण से नहीं वश करें। श्रीरघुनन्दनजी सबके मित्र हैं यह प्रसिद्ध ही है।

श्री अवधकाण्ड में वशिष्ठजी ने श्रीमहारानी कैकेयीजी से कहा कि जहाँ कुलदीप रघुवर जाँयेंगे वहाँ ही सब पशु पक्षी व्याल मृग पादप जाँयेंगे। सुमन्त्र जी ने भी श्रीमहाराज से कहा कि हे राजाधिराज! आपके देश में वृक्ष लता भी मुर्भा गई हैं, सचेतन स्नेहियों की कहाँ तक कही जाय। विचारना चाहिए कि जब रघुराज कुलमण्डन जी के संयोग वियोग में जड़ भी हर्षशोक पाते है तो औरों का क्या कहना? अतः सब प्रकार परमपूजनीय यही सिद्ध हैं और कोई नहीं। जब चक्रवर्ती महाराज जी ने श्रीरघुनन्दन-जी को सर्वगुणसम्पन्न देखा तब सचिवों से मिलकर सलाह की कि किसी प्रकार से हो यह गुणखान प्राणजीवन राजगद्दी पर बैठें तो हमारे रोम-रोम में मोदविनोद छा जावे। उपास्य उपासकों का यह परस्पर अनुराग विचारने योग्य है।

इसी प्रकार श्रीराघवजी ने श्रीमहाराज से कहा कि आप परात्पर धाम में जाँय। तब श्री महाराजजी परम सनेहसानी मधुर-

वाणी से बोले कि मुझे भुक्ति वा मुक्ति नहीं रुचती, मैं यही निरन्तर चाहता हूँ कि तुम्हें और भरतजी को परस्पर मिलते बोलते देखा करूँ। यहाँ यह समझना चाहिये कि यदि महाराज का रूपान्तर हो जाता तो यह पिता पुत्र का विलक्षण दृढ़ानुराग न रहता। अतएव श्री महाराजजी की लौकिक देहयात्रादि है। नैमित्तिक लीलामात्र है क्योंकि वशिष्ठ संहिता में समस्त परिकर तथा अयोध्यावासियों को नित्य सच्चिदानन्द और एकरस कहा है तो श्री महाराजजी तो पिता ही हैं। यह सम्बन्ध अनादिकाल से चला आ रहा है कुछ बीच में नहीं हुआ।

सदा श्री महाराज दशरथजी सदा श्री कौशल्यादि महारानी, सदा दासी सखी सखादि सभी नित्य हैं। केवल लीला के लिये तिरो-भाव और प्रकट होते हैं, वस्तुतः ज्यों के त्यों रहते हैं। कुतर्कवादी नास्तिकों की मोहमयी वाणी को कौन विवेकी कान करता है। यदि कोई करे तो वह महा अज्ञ है क्योंकि मुक्ति तो सरकारी श्वान भी पा जा सकते हैं। विवेकियों की सभा में श्री सर्वेश्वरेश्वरजी के पिता की मुक्ति होने की कौन बात है। श्री रघुनन्दनजी ने श्री लक्ष्मणजी से कहा कि विभीषणजी हमारे परम उपकारी हैं अतः इनको सम्मानपूर्वक राज्य पर स्थित कर आओ। चलता तो मैं भी किन्तु प्रतिज्ञा के वश हूँ इतना कहते ही सरकार के दोनों नेत्रकञ्जों में आँसू भर आये वाणी गद्गद हो गयी। इस प्रकार की कृपालुता और स्नेहवश्यता श्रवण कर यदि पराप्रीति नहीं छा गयी तो संसार में जीने को धिक्कार है।

सहज स्नेह सागर श्री जानकीवल्लभजी में निष्काम अर्थात् सर्वापेक्षाशून्य स्नेहियों का अनुराग पद्मरागमणि के समान निर्मल प्रकाशमय लाली और सरसता सम्पन्न सचिक्कण होता है। जिसके अनुदिन सेवन से प्रीति भक्ति बढ़ती ही रहती है कभी घटती नहीं।

वरन् यह स्नेह श्री कृतज्ञशिरोमणिजी की ओर और भी सहस्त्रगुण अधिक बढ़ जाता है। तभी तो नित्य मुक्तगण एकरस हो सदा पर-धाम में स्थित रहते हैं। केवल अनुराग के करने से सभी स्वार्थ पर-मार्थ सहज ही में प्राप्त होते हैं। श्रीरामनामरूपानुरागी तो बिना प्यारे के गुण के भुक्ति मुक्ति की कभी चर्चा भी नहीं करते। श्री राजीवनयन का संग ही सुखसर्वस्व है और वियोग ही दुःख समुदाय है, यही उनकी भावना बनी रहती है दूसरी नहीं। यह बात श्री मद्रामायण में श्री जानकीजी और श्री लक्ष्मणजी के द्वारा स्पष्ट ही है।[1]

श्री भरतजी ने सभा के बीच में श्रीवशिष्ठजी की न्यूनता सी सूचित करते हुये कहा कि आप सरीखे महात्मा भी ऐसी अनुचित बातें कहते हैं तो दूसरा क्यों नहीं कहेगा? वह रहस्य सावधानता पूर्वक विचारने योग्य है। एक तो श्री महाराज ने राज्य दिया, उनमें भी श्रीकौशल्यानन्दनजी की सम्मति तथा औरों की सम्मति, ऐसे राज्य पर स्थित होना। दूसरे कुलमात्र के गुरु और सर्वमुनिदेव पूजित श्री वशिष्ठजी का तिरस्कार श्री भरतजी ने किया, क्योंकि उनकी उक्ति श्री रघुनन्दनजी के स्नेह में बाधा डालने वाली सी थी। इससे यह उचित सूचित हुआ कि कैसा ही बड़ा क्यों न हो, वह यदि श्री प्रियतम प्राणवल्लभजी के स्नेह विरोधी वचन बोले तो उसे न मानना, लोक वेद का उपहास भले ही सहना। श्री भरतजी जीवों

---

1 यस्त्वया सह स स्वर्गो निरयो यस्त्वया विना।
इति जानन् परां प्रीतिं गच्छ राम मया सह॥
वा०रा० २।३०।१८

न देवलोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे।
ऐश्वर्यं चापि लोकानां कामये न त्वया विना॥
वा०रा० २।३१।५

की शिक्षा के लिये अनुक्षण केवल प्रपत्ति (शरणागति) का ही अनुष्ठान करते हैं सब कुछ श्री राघवेन्द्रजी का है। मैं तो उनके अधीन मेरा कुछ भी नहीं सब उन्हीं का है। मेरे वह हैं और मैं उनका हूँ, यही निष्ठा यदि लौकिक शोक मोह स्नेह त्याग कर बनीं रहे तो समस्त सिद्धान्तसार का लाभ हुआ अतएव यही सदा कर्त्तव्य है।

इस परम स्नेहमय गुण के अनुसन्धान से यह परम स्वादरस प्राप्त हुआ कि श्री रघुनन्दनजी को अति स्नेहवश्यता का ज्ञान, उनमें अनुरागियों का निरन्तर दृढ़ और निष्काम स्नेह, उनके स्वरूप फल और अमित सुख का ज्ञान और सकामता की न्यूनता यह परम स्वादरस प्राप्त हुआ। यही परमसार फल का फल है। संग छोड़कर इस गुण का सर्वदा हृदयकञ्ज में अभ्यास करना उचित है।

❀ दोहा ❀

उभय निष्ठ अनुराग गुन, अगुन सगुन को जीव।
युगलानन्य प्रपन्न ह्वै भजो भेंटिहैं पीव॥

इति श्री युगलानन्यशरण विरचिते हिन्दीभाषा वार्तिकप्रबन्ध श्री रघुवरगुणदर्पणे सर्वश्रुतिसारसिद्धान्तवर्णने सर्वपरिकर परस्पर स्नेहवर्णनं नाम अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥३८॥

अब श्रीकौशल्यानन्दवर्द्धन विषयक रसिक सन्त रसवन्तों की अनूठी प्रीति प्रतीति का वर्णन किया जाता है। श्री स्नेह प्रीति प्रतिपालकजी में जो स्नेहियों की उत्तम प्रीति है, उसका लक्षण यह है कि सब वासनाओं से रहित तदानुकूल्यादि सहित अनुदिन क्षणक्षण लाखों अभिलाष बढ़ाने वाली सन्तोष निवारिणी धारावाहिका एक रसात्मिका प्रीति ही उत्तम प्रीति है। भगवत्प्रेमी सज्जन प्रीति करते हैं; पर केवल भोग्य मानकर करते हैं दूसरी चाह नहीं करते। सरकार के अंग क्षीरसागर के मन्थन समय के परम विशद कोमल रसमय ग्धफेन से भी करोड़ों गुण अधिक कोमल ललित और स्वच्छतर हैं।

चमेली कुन्द गुलाब कस्तूरी केशरादि अमित सुगन्ध इन पर वारे जाते हैं। जिससे प्रीति में भी अनुपम और अलौकिक सुगन्ध ज्ञात होती है।

यह प्रीति स्फटिक इन्द्रनीलमणि आदि से अधिक झलकदार रंग-दार बहारदार रसमयी वाटिका है। यह प्रीति क्या है ? सरस स्वादमयी सुधा है, या श्री राजेश्वरकुमारजी की राजधानी है, या सब फल भरी कल्पलता है। अथवा संजीवनी जीवनमूरि है। किसकी शक्ति है कि प्रीति की अचिन्त्य रीति की तर्कना कर सके क्योंकि वह अतर्क्य है।

जहाँ प्रीति होती है वहाँ यही चाह उत्साह आवेशमय हमेशा रहता है कि इनको क्या दिया जाय कि जिसमें यह प्रसन्न हो जावें। कौन ऐसो अनोखी सुधासानी बात सुनाई जाय कि जिससे इनका मुखकंज सदा प्रफुल्लित बना रहे और ऐसा कौन निर्दूषण भूषण वसन पहिराया जाय कि जिससे यह आनन्दित रहें। प्रीतिमानों की इसी प्रकार की अनेक भावनामयी चित्तवृति हमेशा रहती है। अपने स्नेहियों में सुमेरु से बड़े भी करोड़ों अवगुण रहें तो वह रज के कण के समान भी नहीं देख पड़ते यही प्रीति की रीति है। उनको जो भावे सो करें हम तो उनके चेष्टामात्र में मगन हैं। उनकी गारी भी हमें सुधा प्यारी लगती है, तिरस्कार आदि तो मधुर मिसरी कन्द से भी अधिक स्वाद देते हैं। उनके दुःख में अति दुःखी, उनके मोद में परम विनोद यही प्रीति का लक्षण है। यह प्रीति वालों की प्रीति वरुण के फाँस से भी अधिक बाँधने वाली होती है। प्रीति में मान बड़ाई मर्यादा कुल अभिमान ज्ञान आदि सब लीन हो जाते हैं। जैसे मद्यपान करने पर मनुष्य देहाध्यास रहित बेहोश हो जाता है। ऐसी यह प्रीति अनूठी होती है जो करता है वही जानता है। यह प्रीति बड़ी ठगनी होती है, यह मन बुद्धि चित्त आदि सबको अनायास ही ठग लेती है इसकी अपूर्व ही चाल है।

इस प्रीति की एक और भी विपरीत रीति है कि घन में क्षणस्थायिनी बिजली सी, श्रीलक्ष्मीदेवी, जैसी चञ्चला सी, जैसे दुष्टों की प्रीति चञ्चल, साधुजनों के विरोध चञ्चल होते हैं उसी प्रकार यह प्रीति भी चञ्चल है। बड़े यत्न से स्थिर रहती है, अन्यथा और से और हो जाती है, यह बड़ी विलक्षण होती है। इसमें छः विघ्न प्रबल होते हैं–एक तो कुसंग, दूसरा सत्संग में नेह की न्यूनता, तीसरा श्रीसद्गुरु पदपङ्कज पराग में सामान्य प्रेम, चौथा सन्तों का अपमान, पाँचवां वेद विरुद्ध आचरण, छठा प्रतिष्ठा जाति विद्या महत्वादि। इन छहों का पूरा त्याग होने से यह प्रीति परेश में रहती है नहीं तो नहीं रहती। चाहे कोई कैसा ही उपाय करे परन्तु चली जाती है। यह भी एक परम सिद्ध साधन है कि मान को दूर करके अमान को आगे करना अर्थात् सबके साथ अमानी होना। जो विवेकी हैं वे अपने कार्य ही को साधते हैं उन्हें और किसी की रीति नहीं दिखाई पड़ती और अविवेकी लोक में पुजाने के लिये अपने कार्य को बिगाड़ते हैं। इन्हीं बातों पर ध्यान रखने से प्रीति स्थिर होती है।

और भी छः प्रीति के लक्षण कहे गये हैं अर्थात् अपनी अच्छी से अच्छी वस्तु भी प्यारे को देना, उनसे लेने में कुछ आना कानी न करना। गुप्त बातें कहना पूछना, आप प्यारे के घर प्रसाद पाना और प्यारे को अपने घर प्रीति से पवाना। यह व्यवहारमयी प्रीति है।[1]

उत्तम प्रेमी को तो देने लेने का कुछ भान ही नहीं है. अतएव प्रीति अनिर्वाच्य है। रसास्वादकारी श्रीजानकीबिहारीजी

---

1 ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति ।
भुंक्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीति लक्षणम्॥

की प्रीति अनुरागियों की उनमें शाश्वती अनूठी होती है। वह वाणी के गोचर नहीं है वह सनातनी है। यह प्रीति तो ब्रह्मादिकों को भी दुर्लभ है औरों की क्या गिनती है?

श्रीजानकीशजी के प्रति स्नेही दशा वालों को सातों सागर चुलुक-नीर सम मालूम होते हैं और सूर्य खद्योत सम जान पड़ता है। सुवर्ण के सुमेरु को वे मिट्टी का ढेला मानते हैं, वे चक्रवर्ती राजा और इन्द्रादिकों को भी अपने घर के गुलाम से तुच्छ समझते हैं। वे चिन्तामणि पारस आदिकों को पाषाण से भी तुच्छ मानते हैं, संसार को तृण की राशि सम जानते हैं। ब्रह्माण्ड के पदार्थों को वे इंदारुन फल के समान रमणीय (जो देखने में सुन्दर और स्वाद में कडुआ है) मानते हैं। कामधेनु को पशुसम, कल्पवृक्ष को तरुसम और वेद पुराण संहिता तथा अन्य मत मतान्तरों को पक्षियों की वाणी सम मानतें हैं। तात्पर्य यह है कि उसमें आसक्ति नहीं करते। कहाँ तक कहा जाय अपने देह को भी वह भार सम मानते हैं। वे सोचते हैं कि कब इस देह का त्याग होगा और कब वह एकरस और सदा संयोग-मय रंगीन रहस्य प्राप्त होगा? वे श्रवण कीर्तन निवेदन दास्य सख्य शृङ्गार आत्मसमर्पण आदि सब प्रकारों सें तत्पर रहते हुए भुवनभूषण श्रीराजसूनुजी में पगे हुये दिन रात्रि को क्षण के समान बिताते हैं। ऐसे लोगों का राग द्वेष ईर्ष्या वा मत्सरता किसी के साथ नहीं रहती। सबमें इन्हीं दम्पति के प्रताप रूप गुण दीखते हैं। वे कभी अपना पूर्व प्रमाद सोचकर रोने लगते हैं, यह कि हाय यह रस छोड़कर मैंने वृथा नीरस प्रपंच में इतना समय व्यतीत किया। कभी महामाधुरी में मत्त हो हंसने लगते हैं अर्थात् अपने भाग्य को धन्य मानते हैं। कभी नाम के गुणों का गान करते हैं, कभी लज्जा छोड़-कर हंसते हैं, कभी मौन रह जाते हैं ऐसी ही अनेकों अवस्थायें प्रीति में होती हैं।

ऐसी प्रीति यदि कदाचित् किसी में ठहर जाय तो फिर ऐसा कौन सा आनन्द है कि जिसकी प्राप्ति उसे नहीं हो सके। ब्रह्मा विष्णु महेशादि सभी देव मुनिगण उनको बार-बार नमस्कार करते हैं। वे ब्रह्मादिकों की बहुकालस्थायिनी उपाधिशून्य विभूतियों को भी वमन सम जानकर हृदय से दूर किये रहते हैं। वे नारीमात्र को नागिनी बाघिनी डाकिनी विषबेलि और दावानल की ज्वाला से भी तीक्ष्ण मानते हैं, उन्हें स्पर्श करने और देखने में भी उनको डर होता है। वे प्रतिष्ठा को शूकर की विष्ठा के समान, मान को मदिरा के समान और गौरव को कुंभीपाक के समान जानते हैं।[1]

पुलकित और गद्गद् कण्ठ तो क्षण क्षण रहा करते हैं। वे सब ब्रह्माण्डों को पावन करने में समर्थ हैं, दस बीस पचास सौ की क्या गिनती है? उनको स्नेह तरंगिणी का प्रवाह कभी नहीं रुकता। उनके स्नेह की दृढ़ता ऐसी है कि सब ईश्वर भी लगें तो वह न डिगे।

मेरे सरकार श्रीमहाराजकुमारजी अलबेले छैल बने रहें, हम उन्हीं के हैं सन्देह नहीं। इस प्रकार की जो रति की दृढ़ग्रन्थि पड़ी है वही प्रणय कहलाती है। यह प्रणय शृंगारादि भक्ति रसों का पोषक है। ऐसे ही अनेक प्रकार के विलक्षण लक्षण विचक्षण गण कहते हैं। जिनका अन्त नहीं इनका वर्णन करके पार पाने में कोई समर्थ नहीं हो सकता, तो भी यहाँ निज मति अनुसार कुछ कहा गया है यह प्रीति अचिन्त्या है। इसी को ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म कहते हैं, भक्ति वाले भक्ति प्रतिपाद्य सगुण स्वरूप कहते हैं और इसी में समस्त संसार है। देख लीजिये; व्याघ्रादि दुष्ट जन्तु भी प्रीति के वश हो जाते हैं औरों की क्या कथा है। अतएव सब

---

1 प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा गौरवं शुद्ध रौरवम्।
बहुमानं सुरापानं तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्।

साधनों की आशा छोड़ प्रीति होने के लिये यत्न करना उचित है। सब ग्रन्थों की यही सम्मति है कि परमेश्वर प्रीति से प्रसन्न होता है अन्य साधनों से नहीं।

श्रीरघुनन्दनजी के गुण समुदाय वर्णन में यद्यपि श्रीलाड़िलीजी के गुण भी आ गये। रूप में कुछ भेद नहीं तथापि बिना पृथक् कुछ कहे नहीं रहा जाता। अतः श्रीलाड़िलीजी के कुछ स्व-रूपमय गुण कहे जाते हैं।

श्रीलाड़िलीजू के दाख के पाक सुधाकन्दादि से शतकोटि गुणित मधुर स्वादुमय वचन है। जिनके श्रवण करने का उत्साह चाह अनुक्षण श्रीसनेहसागरजी को भी रहता है। मृदुल मनहरण चरण सरोज जावक से रंगीन सहज ही प्रीतम मनमोहन मृदुल मनोहर नूपुरों के सहित शोभित हैं। जहाँ निरन्तर परमरसिकों के मन मधुप मकरन्द पान कर मत्त होकर गुँजार करते रहते हैं। नख मणि की छटा मानों छवि मेघ की घटा है। वह लाव-ण्ययुक्त सरस प्रकाशरस बरसाती हैं। जिनकी आभा के अंशांश से व्यापक ब्रह्म निर्विकार कहलाता है। इसी प्रकार अंगुलियाँ जगमग भूषण से जगमग हो रही हैं। नख शिख सुषमाखानि हैं। कभी भानु की उष्णता जिनको स्वप्न में भी नहीं लग पाती है। इसलिए अति कोमलतर अंग हैं। रमा भवानी-ब्रह्माणी आदि सभी जिनकी माधुरी अवलोकन कर पहले तो परम संकोच को प्राप्त होती हैं। पश्चात् दासी होकर सेवन करती हैं। कमल से भी अत्यन्त कोमल रसमयी भूमि में चरण रखते समय उनकी सुकुमारता विचारकर सखीगण तथा प्रीतम को भय हो जाता है। और कहाँ तक कहें जावक भी चरणकमल में भार की भाँति लगता है। वीणा आदि यन्त्र को बजाने तथा समझने में परम कुशला हैं नृत्यभेद तथा

अनन्त राग रागिनियों को यथार्थ जानती हैं। गान आदि कलाओं में ऐसा चातुर्य हैं कि प्रियतम को अद्भुत् जान पड़ते हैं। तथा यह विचारकर चकित होते हैं कि श्रीलाड़िलीजू इस रागिनी को कहाँ से गाती हैं? हमने तो इस रागिनी का नाम भी नहीं सुना है। बिना राग तान के एक दिन भी व्यतीत नहीं होता है। मणि-जटित सुगन्ध सुगन्धित विचित्र चित्रकारियों से चित्रित महल अटारियों में प्रियतम तथा सखियों के साथ निरन्तर मोद प्रमोद करती रहती हैं।

वहाँ रमा गौरी गिरा आदि करोड़ों देवकन्या नागकन्या किन्नरी आसुरी नरी कोटि कोटि सेवन में लगी रहती हैं। चँवर व्यजन आदि होते रहते हैं। आप सखियों के कर कमलों से समर्पित विविध सुगन्ध सम्पन्न दिव्य ताम्बूल बीटिका चर्बण करती हैं। आपके बदन की ललाई में श्रीलालजी लट्टू होकर बार बार छटा निहारते हैं। आप अनेक सुकुमारी नायिकाओं के अद्भुत हास विलास लाड़ को पाती हैं। कभी उदासीनता न होने पावे इस विचार से प्रीतम सहित सभी सखियाँ आपका मन जोगाती रहती हैं। तनुतर-अत्यन्त क्षीण कटि प्रदेश में सौन्दर्य निधान काञ्ची आदि भूषण सम्पन्न विलसित हैं। परमयौवनमयी रसमयी त्रयोदशवर्ष की अवस्था सर्वदा एकरस बनी रहती है। जैसे श्रीमहाराजकुमारजी षोडश वर्ष के नित्य किशोर रंगबोर चित्तचोर बने रहते हैं वैसे ही श्रीकिशोरीजी को जानिये। रसिक सुख सम्पत्ति श्रीदम्पति जी के सदा एक वय, एक प्राण, एक मन और एक ही सब रहस्य रहा करते हैं।

श्रीसुकुमारीजी नित्य अखण्ड सौभाग्य लक्ष्मी से सम्पन्न है। आपके समस्त लक्षण परम दिव्य भव्य नव्य और अनुपम हैं। आपके श्रीसौभाग्य का सरकार भी नहीं पार पाते क्योंकि वह

अनन्त हैं। ज्योतिष सामुद्रिक तथा उत्तम चिह्न गुण प्रकाशक शास्त्र समूह केवल श्रीजानकीजी में ही सफल अर्थात् संघटित हुए औरों में कहाँ पाया जायगा ? आपके मन वचन तन में शास्त्र लोक सम्मत अपलक्षणों का स्वप्न में भी लेश नहीं हुआ है। श्रीकिशोरीजी की कौन बात, उनकी दासी की दासी की दासी भी अपनी कान्ति से रमा आदिकों के सौभाग्य सौन्दर्य को तुच्छ करती हैं। श्रीजनकनन्दिनीजी रूप सौन्दर्य माधुर्य कान्ति लावण्य सौगन्ध्य आदि दिव्य अनन्त गुणों से मण्डिता हैं। अनेक जन्मों से थकी हुई सरस्वती आपमें साक्षात् तथा औरों में वचन रूप से स्थित हो केवल श्रीजानकीजी के रूप गुण कथन में विश्राम पाती हैं। और किसी के वर्णन में उन्हें बहुत दुःसह दुःख होता है क्योंकि उसमें श्रीसीतारामजी के नाम और रूप के बिना दूसरी तरह के वाग्विलास जो लोग सामान्य व विशेषरूप से करते हैं उससे वह थक जाती हैं। श्रीजानकीजी के परम स्वच्छ यश नाम आदि श्रीप्यारेजी के समान ही हैं क्योंकि दम्पत्ति जी के नाम रूप गुण में कुछ भेद नहीं है यही सिद्धान्त सार है। श्रीजानकीजी के अंशांश से उत्पन्न मूल प्रकृति के भ्रू विलास से करोड़ों ब्रह्माण्डों के स्थिति संहार जन्म हुआ करते हैं। ऐसी श्रीजानकीजी में जिन अभागों का स्नेह निश्छल भाव से नहीं हुआ वे ही मायामयी चक्की में असंख्य कोटि बार पीसे जाते हैं और पीसे जायेंगे किन्तु जिनका स्नेह है वे परमानन्द का निर्विवाद स्वाद लेते हैं और सदा लेंगे। मैं दृढ़तर लीक खींचकर कहता हूँ कि यदि शीघ्र बन्धन से छूटने की इच्छा हो तो अनन्यशरण श्रीजानकीजी के हो जाओ। इसी में अनमोल अमल कुशल है, जिस परात्पर वस्तु के लिये सदा पचते हो वह अनायास ही मिल जायगी। श्रीलड़ैतीजू में अविरल स्नेह

हुआ तो सब काम सफल हुआ । किसी ब्याज से भी श्रीसीतादिक नाम के उच्चारण होने से प्यारे वशीभूत हो जाते है। वही उपाय करना उचित है कि जिससे श्रीप्यारीजी में प्रीति बढ़े। जिनकी कृपा दृष्टि की लालसा श्रीलालजी को अनुक्षण बनी रहती है दूसरे की कौन कहे ? यह अखिल विश्व और वह परम दिव्य त्रिपाद विभूति दोनों ही जिनकी अनुग्रहमयी दृष्टि के अधीन हैं और क्या कहा जाय ।

परम सिद्धान्त ज्ञाता श्रीरघुनाथ कृपापात्र श्रीहनुमानजी ने भी यही कहा कि श्रीरघुवर प्राण प्यारी सुकुमारी श्री किशोरीजी के सदृश दूसरी पाने के लिये यदि अखिल ब्रह्माण्डों में श्रम करके अन्वेषण किया जाय तो भी कोई मिलना कठिन बात है क्योंकि इनके समान यही हैं यह बात श्रीमद्रामायण में प्रसिद्ध है ।[1]

और भी श्रीवायुनन्दनजी ने कहा कि त्रैलोक्यराज्य तथा भोग ऐश्वर्य भी श्रीजानकीजी के कोटितम (करोड़वें) अंश के समान भी सुखदायी नहीं हैं क्योंकि श्रीकिशोरीजी अनूठी और अनुपम हैं ।[2]

---

1 यदि रामः समुद्रान्तां मेदिनीं परिवर्तयेत् ।
अस्याः कृते जगच्चापि युक्तमित्येव मे मतिः ॥
वा० रा० ५।१६ १३

2 राज्यं वा त्रिषु लोकेषु सीता वा जनकात्मजा ।
त्रैलोक्य राज्यं सकलं सीताया नाप्नुयात्कलाम् ॥
वा०रा० ५।१६।१४

श्री जानकीजी की सुधारस सानी वाणी सुनकर श्रीमारुत-नन्दनजी ने कहा कि हे सर्वेश्वरी शरणागत पालिनी ! आपके स्वाभाविक वचनामृत से हम तृप्त हैं । आपके मधुर रसमय वचन को सुनकर भुक्ति मुक्ति सब फीकी जान पड़ती है क्योंकि यह परम ज्ञाताओं का भी सर्वस्व है । आपकी रसमयी चेष्टा श्रीरघुनन्दनजी के रसमय क्लेश विशेष को दूर करनेवाली हैं। आप श्रीजीवनप्राणजी के हृदय में अमित भाँति से परम विनोद बढ़ाती हैं और पतिव्रताएं आपके पद पंकजपराग का सेवन स्मरण कर स्वधर्म में आरूढ़ होती हैं ।

निःस्वार्थ भाव से मित्र शत्रु मध्यस्थों का मन वचन से निरन्तर और स्वाभाविक ही हित चाहने को दया कहते हैं ।१। देश काल विचार कर आप दुःख सह करके देने को दान कहते हैं ।२। शरीर मन और वचन के दण्ड को तप कहते हैं। शीत उष्ण सहकर निरालस हो गुरुजन और सज्जनों की अत्यन्त निष्काम सेवारूपी दण्ड को शारीरिक तप कहते हैं। राग द्वेष और कामादि बड़े शत्रुओं को जीतना और प्राणायाम प्रत्याहारादि द्वारा विषयों को जीतकर मन को दण्ड देना मानसिक तप कहलाता है । मिथ्या तथा क्रूर वा कठोर वचन न निकलने देने वा मौन रहने द्वारा मन के दण्ड को मानसिक तप कहते हैं ।३। शौच दो प्रकार का है—बाह्यशौच और अन्तःशौच । निष्कपटभाव और समता आदि गुणों से अन्तःकरण पवित्र होता है और जल तथा मृतिका आदि से बाहर के शरीर की शुद्धि होती है ।४। ये चारों गुण धर्म रूपी वृषभ के मनहरण सुखकरण चारों चरण हैं । जब श्रीजानकीजी की नवीन नख-कान्तियों में अनुराग होता है तब सभी गुण अनायास ही और सहज ही रीति में उनमें आ जाते हैं । श्रीकिशोरीजी अपने परात्पर ऐश्वर्य को छिपाये रहती हैं। जिससे लीला रस में अत्यन्त

विनोद पाती हैं। प्रगट लीला करने में यही तात्पर्य है कि सभी जीव कृतकृत्य हों और परम माधुर्यजीवीगण अपना अभिलाष पूरा करें।

श्रीजानकीजी असंख्य कोटि सखियों से परिसेवित रहती हैं। जिनमें तैंतीस मुख्य हैं, उन्हीं के आश्रय से माधुर्य ऐश्वर्यादि सभी रहस्य सिद्ध होते हैं। एक एक सखी की करोड़ों करोड़ सखियाँ किङ्करी हैं। उन तैंतीसों के नाम लिखे जाते हैं जिनके श्रवण करने से सभी वस्तुयें तुच्छ जान पड़ती हैं और श्रीजानकी जी में तथा परिकरों में अखण्ड एकरस स्नेह बढ़ता है। श्री, भू, लीला, उत्कृष्टा, क्रिया, योगा, उन्नति, ज्ञाना, पर्वी, सत्या अनुग्रहा, ईशाना, कीर्ति, विद्या, इला, कान्ति, लम्बिनी, चन्द्रिका, क्रूरा, कान्ता, वैभीषणी, क्षान्ता, नन्दिनी, शोका, शान्ता, विमला, सुभदा, शोभना, पुण्या, कला, मालिनी, महोदया और आह्लादिनी।३३। ये ही तैंतीस सखियाँ शक्तिशिरोमणि श्रीजानकीजी की प्रधान हैं। ये सब श्रीजानकीजी की भृकुटि देखा करती हैं कि जो आज्ञा हो सो करें। अब इनके स्वरूपगुण संक्षेप से कहे जाते हैं।

श्रीदेवी समस्त शोभा श्री और विभूति श्रीजानकीजी के सम्बन्धियों को देती हैं। औरों को केवल सुकृतानुसार चार दिनों के लिये सुख प्रेरणा करती हैं। भू देवी समस्त विश्व का आश्रय हैं। अर्थात् इन्हीं से समस्त विश्व का जन्मादि होता है। लीला देवी से लौकिकी अलौकिकी निखिल लीलाएँ हुआ करती हैं। ये तीन शक्तियाँ अत्यन्त श्रेष्ठा हैं। उत्कृष्टाजी जीवों को सब प्रकार की उत्कृष्टता प्रदान करती हैं। क्रिया देवी समस्त शुभ क्रियाओं को प्रेरित करती हैं।

योगा देवी अष्टाङ्ग योगादिकों को अधिकारियों के चित्त में प्रेरित करती हैं। उन्नति देवी सब वस्तुओं की वृद्धि कराती हैं। पर्वी देवी जय पराजयों की नियन्त्री हैं। सत्याजी अपनी कृपा कोर के कटाक्षों से सत्य की प्रेरणा करती हैं। श्रीअनुग्रहाजी स्नेहियों के चित्त में दया अनुकम्पा आदि गुणों की प्रेरणा करती हैं। श्रीईशानादेवी विमुखों के मन में समस्त सुदुस्तर नानात्व भेदों को बसाती हैं और सज्जनों को ज्ञानादि साधन प्राप्त कराती हैं। श्रीकीर्तिदेवी यश देती हैं। श्रीविद्यादेवी के प्रसाद से गणेशादि देव, दैत्य, मनुजगण सभी विद्या पाते हैं। इलादेवी के प्रसाद से गद्य-पद्यमयी काव्य रूपा मनोहारिणी वाणी निकलती है। कान्ति देवी कान्ति बढ़ाती हैं। श्रीलम्बिनी देवी की कृपा से श्रीरघुनन्दनजी के नाम रूप धामादि के चित्र गोचर होते हैं। श्रीचन्द्रिकादेवी सुधामय शीतल प्रकाश देने वाली हैं। क्रूरा देवी विमुखों के तन, मन, वचन में क्रूरता देती हैं और सज्जनों की क्रूरता हरण करती हैं। कान्ता जी सबों में राग मोह शुभ अशुभ की प्रेरणा करती हैं। श्रीविभीषणाजी असज्जनों को भय शंकादि देती हैं और सज्जनों का भय निवृत्त करती हैं। क्षान्ता देवी क्षमा सहित शान्ति गुण देती हैं। नन्दिनीजी यथाधिकार आनन्द देती हैं। शोकाजी भगवत् विमुखी जीवों को शोक देती हैं और आप शोक रहित रहती हैं। शान्ताजी शान्ति अर्थात् निर्विकल्प समाधिस्थ मति की अवस्था विशेष देती हैं। श्रीबिमलाजी सज्जनों को बुद्धि की विमलता देती हैं। श्रीसुभद्राजी जीवों पर अनुग्रह करके हृदय में सद्गुणों को बसाती हैं। शोभनाजी परमा सुषमा देती हैं। श्रीपुण्याजी जिसपर कृपा करतीं हैं उसे पुण्यमग्र कर देती हैं। कला देवी समस्त कलाओं की प्रेरणा करती हैं। श्रीमालिनीजी व्यापकों को व्यापकत्व देतीं हैं।

श्रीमहोदयाजी भक्ति विभव प्रकृति सब वस्तुओं की प्रेरिका हैं। श्रीआह्लादिनी देवीजी श्रीयुगल सरकार के अभिराम नाम और अनूप रूप का आह्लाद स्नेहियों के हृदय में झलका देती हैं। यही शक्तियाँ श्रीजानकीजी की सखियाँ हैं इनका परत्व कहने में यद्यपि कोई समर्थ नहीं है तथापि संक्षेप से कुछ यहाँ कहा गया। इन सखियों के पद कमल और नामों की उपासना से सब मोद विनोद अनायास ही प्राप्त होते हैं। ऐसी श्रीजानकीजी की सखियाँ हैं।

श्रीजानकीजी स्वाधीनपतिका हैं अर्थात् सौन्दर्यादि गुणों से अपने पति को अधीन किये हुई हैं और सब दिव्य गुणों से मंडिता हैं। जैसे श्रीजानकीवल्लभजी के समान अन्य कोई नहीं, वैसे ही श्रीस्वामिनीजी के सदृश भी कोई नहीं। वैसे ही श्रीदम्पति परिकर के समान और कोई नहीं है। श्रीस्वामिनीजी में श्रीराघव जी से भी अधिकतर क्षमा और शरणपालकत्वादि गुण हैं और करुणा (दया) से हृदयकञ्ज द्रवीभूत रहा करता है। अर्थात् करुणा श्रीस्वामिनीजी में अधिक है। जैसे श्रीरघुवंशभूषणजी महात्माओं द्वारा सेवित रहते है वैसे ही श्रीस्वामिनीजी भी सभी से वंदिता हैं। जिसपर श्रीसर्वेश्वरीजी की करुणादृष्टि होती है उसी पर सरकार रीझते हैं वह चाहे जैसा होय। यह बात श्रीमद्रामायण में भलीभाँति विचार करके देख लीजिए।

केवल श्रीजानकीजी के अन्वेषण सम्बन्ध से श्रीहनुमानजी के वश्य हुये और अपने को किंकर कहा। केवल श्रीप्यारीजी के ही सम्बन्ध से सुग्रीवादि कीशगण से सख्य भाव माना औरों को भी उन्हीं के सम्बन्ध से परिवार सहित परमपद दिया, देते हैं और देंगे। श्रीरघुनन्दनजी के स्नेहियों पर श्रीजानकीजी की अत्यन्त करुणा (दया) और स्नेह रहता है। दोनों ही परस्पर प्रेम की

मूर्ति हैं। इनकी प्रीति रीति अनिर्वाच्य है। श्रीकिशोरीजी के वात्सल्य सौशिल्यादि गुण श्रीरघुनन्दनजी से बढ़े हुए हैं। छोटे वा बड़े जो जो मनोरथ श्रीरघुनन्दनजी के हृदय में उठा करते हैं उन सबों को श्रीमहाराजकुमारजी पहले श्रीजानकीजी से निवेदन कर पीछे तदिच्छा पूर्ण किया करते हैं।

श्रीजानकीजी श्रीरघुनंदनजी की प्राणजीवनी धर्मपत्नी हैं। श्रीरघुवरजी श्रीप्रियाजी को सर्वकार्य करने में अग्रगण्य बनाये रखते हैं। आप सुचारू श्रीजानकी मुखचन्द्र के चकोर बने रहते हैं। अनुक्षण उनके सौन्दर्यामृत को एकटक पान किया करते हैं। उनके नवीनवचन सुनने के लिये प्रवीण श्रीरसिकराजजी मृगसम लुब्ध हुए रहते हैं। सरस छबि रस के मीन बने रहते हैं। श्रीलाड़िली जी के सुवासित अङ्गों पर मधुर मधुप हो मत्तता पूर्वक गुञ्जार करते रहते हैं। सभी अंगों में सदा श्रीलालजी बंधे रहते हैं किसी प्रकार नहीं छूट सकते क्योंकि यह स्वादमय बन्धन है। श्रीस्वामिनीजी विलक्षण और अद्भुत छवि गुण कला की छटा अनुक्षण प्रादुर्भूत कर श्रीप्राणवल्लभजी के मन को हर लेती है। शृङ्गार रस की पूर्णता यथार्थ में यहाँ ही है क्योंकि दोनों ही परमस्नेह और प्रणय के सागर हैं अन्यत्र किसी में ऐसे ये नहीं दीखते।

श्रीनारायणादि मूर्तियों में कुछ-कुछ माधुर्यरस पाया जाता है पर उनके साथ-साथ बहुत से माधुर्य विरोधी चतुर्भुज, शेषा-सन, जल में वास, गरुड़ वाहनादि पदार्थ भी हैं जिससे वहाँ पूर्ण माधुर्य नहीं हो सकता तथा श्रीकृष्णजी में भी माधुर्य सहायक पदार्थ का अभाव है। गोचारण कम्बल ओढ़ना, लकुटी हाथ में तथा महाराजोचित वैभवविहीन गोपकुल में जन्म के कारण यहाँ

माधुर्य नहीं बनता है। यहाँ तो सब प्रकार से सब रस पूर्ण है। एक तो चक्रवर्तिकुमार सर्वमाधुर्योपयोगी वस्तुसम्पन्न कुल, दूसरे द्विभुज, तीसरे धनुषधारी, चौथे श्रीप्रमोदारण्यविहारी, पाँचवें अनेक राजकन्या, देवकन्या, किन्नरी, गन्धर्वियों से सेवित अखण्ड निर्भय बहारदार विहार इत्यादि समस्त गुणगण नवरंग उजागर में पाया जाता है। अतः यही सबके ध्येय और ज्ञेय हैं।

ऐसे श्रीयुगलसरकार सब गुणों से पूर्ण हैं। सकलवाञ्छाप्रद हैं। इन्हीं दोनों मूर्तियों के नाम और गुणों के सभी आश्रित हैं अतएव मैं सब प्रकार इन दोनों मूर्तियों के शरण में हूँ। जिन दोनों की कृपा से युगलसरकार का यथार्थ परत्व माधुर्य भक्तों को जान पड़ता है। वेद-पुराण, स्मृति, संहिता तन्त्र, इतिहास, श्रीमद्रामायणादि सभी केवल श्रीमहाराजकुमारी और महाराजकुमार जी के नाम-रूप-गुण-धामादिकों के परम परत्व माधुर्य और उक्त दम्पति की अत्यासक्ति का ही निरूपण करते हैं। जैसे चन्द्रिका और चन्द्र का योग, सूर्य और प्रभा का संयोग, दक्षिणा और यज्ञ का संयोग, भक्ति और ज्ञान का संयोग सदा नित्य ही रहा करता है। उसी प्रकार श्रीयुगलबिहारिणी बिहारीजी का नित्य अत्यन्त संयोग है, ये कभी पृथक् नहीं होते। यह बात श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण उत्तरकाण्ड आदि में स्पष्ट ही देखी जाती है।[1]

श्रीदम्पति के गुण तो पाताल समुद्र और आकाश से भी करोड़ों गुणा अथाह अपार और गम्भीर हैं तो भी मैंने श्रीजानकी–जीवनजी के गुणों से मोहित और प्रेरित हो अपने मन के मोद और विनोद के लिये कुछ वर्णन कर अपने असंख्य जन्मों के ताप

1 अनन्या हि मया सीता भास्करेण यथा प्रभा।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा॥

को श्रीमनोहरजी के गुणामृत कथन द्वारा भलीभाँति शान्त किया।

हे शरणागतपाल श्रीनृपलाल मनहरण श्रीजानकीरमणजी मुझ पर इसी प्रकार की कृपादृष्टि होवे कि जिससे सब नेह नाते सम्बन्ध एकत्र होकर आपके गुण नाम और माधुरी में एकतार तदाकार होवे। मैं यद्यपि सब अवगुणों की राशि हूँ तो भी आपको स्वीकार करते ही बनेगा क्योंकि मेरा और आपका दिव्य और सनातन सम्बध अनिवार्य है इससे अब मेरे अपराध क्षमा हों। मैंने आपसे विमुख हो अत्यन्त दुस्सह दुःख पाया। अब छल कपट छोड़ आपकी शरण में हूँ। मुझे नजर से जुदा न कराइये यदि कराइयेगा तो सुयश में दाग लग जायेगा, कहाँ लों प्रार्थना करूँ। सौ बात की एक बात यह है कि जैसी आपकी आत्मीयता करने की रीति है वह कीजिये। मुझे भुक्ति-मुक्ति-मान-बड़ाई प्रभुत्व आदि स्वप्न में भी अपेक्षित नहीं है। केवल यही चाह है कि सरकार के गुणगण में पगा रहूँ। मैं आपका हूँ जो चाहिये कीजिए।

इस प्रीति गुण के श्रवण मनन निदिध्यासन से साक्षात् श्रीजानकीवल्लभजी का अनूप स्वरूप होना सब संशयों की अत्यन्त निवृत्ति और नामादि में रुचि फल श्रीसरकार के स्नेहियों को प्राप्त होते हैं। इस गुण समुदाय को जो शुद्ध होकर विचार पूर्वक पाठ करेंगे, वे अनायास ही भवपाशों का छेदन भेदन कर परात्पर अभिराम धाम में निःसंशय अवश्य ही जाएंगे और सरकार के तो अनुक्षण परम प्रियतम होंगे।

श्री श्री सहज सनेह रस सागर जुगल सुजान।
प्रीति सगुन गुम्फन कियो जुगल अनन्य अजान॥
मेरी मति गति तुच्छ अति किमि बरनै गुनलाल।
कह्यो सो श्रीसद्गुरु कृपा वारि आपने भाल॥

बोधक रस गुन भक्ति भल सोधक कलिमल मूल।
श्रीरघुवर गुन आदरस सरस स्वच्छ अनुकूल॥
विरच्यो विमला मध्य यह निकट नेत्रजा मीत।
युगलानन्यशरन हरन मोह महान अनीत॥
जे अतिसय रस स्वाद में पगे जगे जग माँझ।
तिनको प्रान समान यह ह्वै हैं भोरहु साँझ॥
श्री परिकर गुरु बदन ते आज्ञा पाय प्रकास।
भाषा वार्तिक हौं कियो प्रियगुण दर्पण खास॥
लघुमति मोरि न देखबी लखब वस्तु वर सार।
काम मनी ते बुधन को खानि को कौन विचार॥
जहां सरस माधुर्य ते होय कहूँ विपरीत।
तेहि बनाय भल दीजिये करि मोपर वर प्रीति॥

इति श्रीयुगल दम्पत्ति पद पंकज परागाश्रित लघुकिंकर श्रीयुगलानन्यशरण विरचिते हिन्दीभाषा वार्तिक प्रबन्धे सर्व श्रुति-सार सिद्धान्त प्रतिपाद्ये श्रीरघुवर गुणदर्पणे प्रीति गुण प्रदर्शनं नाम ऊनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥३९॥

उपसंहार

दोहा

माघमास तिथि वेदवर असित पच्छ कविवार।
पहर उपर दिन चढ़त के समय पूर सुखसार॥
गुफा सफा आनन्दमय तामें बैठि अनन्त।
श्री सरयू पर प्रीति के तीर भयो गुन जन्त॥

अब पूर्वोक्त परात्पर गुणगणों के यथार्थ अधिकारी बड़भागी अनुरागी रसिक सनेहियों के गुण संक्षेप से एक अध्याय में वर्णन

किये जाते हैं क्योंकि श्रीरघुनन्दनजी अपने गुणों से ऐसा प्रमोद नहीं पाते जैसा कि अपने सम्बन्धियों के गुणों से रोम रोम तृप्त होते हैं। अतएव अवश्य ही उनके गुण वर्णन करने योग्य हैं। जैसे सरकार के गुण अनन्त हैं वैसे ही उनके भी हैं किन्तु थोड़े ही यहाँ कहे जाते हैं। पहले तो गुणों के नाम सुनियेः–

प्रपन्नत्व, प्रपत्ति नैष्ठिकत्व, निर्भरत्व, उपायशून्यत्व, पर-तंत्रत्व, अप्राकृतत्व, ऐकान्तिकत्व, नित्यरंगित्व, परमैकान्तिकत्व, सम्बन्धज्ञातृत्व, शेषभूतत्व, शेषवृत्तित्व, नित्यसूरित्व, मुमुक्षुत्व, अविधिगोचरत्व, पराकाष्ठत्व, उपायादिस्वरूपबोध्यत्व, आत्मारामत्व, कृपालुत्व, अकृतद्रोहत्व, सहनशीलत्व, सत्यसारत्व, अनवद्यात्मत्व, समत्व, सर्वोपकारित्व, निर्दम्भत्व, अकामित्व, अमानित्व, सशमदम सम्पन्नत्व, अकिंचनत्व, मृदुत्व, अनीहत्व, मितभोक्तृत्व, स्थिरत्व, अप्रमत्तता, गम्भीरता, धैर्य, षड्गुणजयित्व, मित्रता, कारुण्य, निराशता इत्यादि ४० से ऊपर मनोहर दिव्य मंगलमय अनुपम गुण हैं। इन्हीं गुणवालों के वश्य होकर श्रीप्राणजीवनजी उनके पीछे पीछे फिरते हैं।

अब इनके लक्षण भी क्रमशः अति संक्षेप में लिखे जाते हैं। प्रपन्नत्व का यह अर्थ है कि मन वचन काय से श्रीमज्जानकी-जानिजी के रसामृत सुयश पानकर परममोद में प्राप्त होना। अन्य सभी वासनायें जिनकी निरस्त हो गई हों वे ही परम-धन्य प्रसन्न हैं ॥१॥ चराचर जीवों में परात्पर अन्तर्य्यामी श्रीरघुनन्दनजी का अनुसन्धान करना और निर्वैर रहना और सब साधनों को छोड़ देना यही प्रपत्ति निष्ठा गुण है ॥ २ ॥ श्रीजानकीवल्लभजी के वात्सल्य कृपादि परम दिव्य गुण विचारकर बार बार तदाकार वृत्ति को लगाये हुए तदाश्रय होकर अपनी देह के भरण पोषण की तथा परलोक प्राप्ति की चिन्ता त्याग

देना और अचिन्त्य महामोद के साथ रहना ही निर्भरत्व गुण है ॥ ३ ॥ श्रुतिसंहितादिप्रसिद्ध कर्म ज्ञान भक्ति उपायों के साथ अनंगीकार पूर्वक (अर्थात् उनकी चिन्ता छोड़) श्रीजानकीजीवनजी से सम्बन्ध और उनकी शरण में दृढ़ रहना यही उपायशून्यत्व गुण है ॥४॥

सर्वदेश सर्वकाल और सर्वावस्था में सन्तत संकल्प विकल्प छोड़ अनुक्षण अपनी तदधीनवृत्ति विचारना ही परतन्त्रता गुण है ॥५॥ अपने स्वरूप को स्थूल सूक्ष्म और कारण इन तीनों देहों से भिन्न और चिन्मय एकरस तथा तुरीय जानना यही अप्राकृत गुण है ॥६॥ ऐकान्तिक सरकारी सज्जनों के चरितामृतपान के अतिरिक्त अन्यकार्य तनिक भी नहीं अच्छा लगना और चित्तवृत्ति का गंगा सरयू के धारा प्रवाह के समान स्वरूप में लीन हो जाना यही उत्तम स्नेह ऐकान्तिकत्व गुण कहलाता है ॥ ७ ॥ नित्यरंगित्व गुण भी यही हैं ॥८॥ मन्त्रराज तथा शरणागत मन्त्र के अर्थ का जप सहित और विकार रहित चित्त से निरन्तर मनन करना परमैकान्तिक गुण कहलाता है ॥९॥ अपना और सरकार का नाता सद्गुरुओं के द्वारा दृढ़ करने को सम्बन्ध ज्ञातृत्व कहते हैं ॥१०॥

श्रीराघवेन्द्रजी के स्वरूप को परब्रह्म का अंश मानना, स्वयं और का अंश न बनना केवल श्रीरघुनन्दनजी का सब प्रकार से कहलाना यही शेषभूतत्व गुण है ॥११॥ श्रीजानकीवल्लभजी का मैं हूँ और ब्रह्माण्ड समूह तथा तल्लोकाधिष्ठातागण हैं इसी विश्वास को सदा बनाये रहना शेषवृत्ति परत्व गुण है ॥१२॥ निज परस्वरूप को दृढ़भाव से सब दिव्यगुण सम्पन्न अखण्ड सच्चिदानन्द बिहारी मानना नित्यसूरित्व गुण है ॥१२॥ मुमुक्षुत्व गुण यह है कि उपाधि (विघ्न) भूत कार्यों को छोड़कर आवश्यक

साधनों समेत श्रीललीलालजी सम्बन्धानुकूल भजन करना। (वैराग्य विवेक मुमुक्षुत्व शम दम उपरति तितिक्षा श्रद्धा समाधान ये ही आवश्यक. साधन हैं)। ॥१४॥ बाहर के चिन्हों से रहित भीतरी स्नेह सहित होना अविधिगोचरत्व गुण है, जो श्रीशुकदेवादिमुनियों में स्पष्ट झलकता है ॥१५॥

अत्यन्त सम्बन्धाभिमान पूर्वक ध्येयाकार रूप से तदात्म-चित्तत्व को पराकाष्ठत्वगुण कहते हैं ॥ १६ ॥ भक्ति शरणागति आदि उपाय, श्रीयुगलसरकार उपेय, अपना रूप उपेता, चरणानुराग फल और विरोधी विजातीय संग इन पाँचों बातों को भलीभाँति जानना ही उपायादि स्वरूप ज्ञान है ॥१७॥ देहादिकों का अभ्यास छोड़कर केवल स्वरूप माधुरी में मग्न हो जाना यही आत्मारामत्व गुण हैं ॥१८॥ ये अष्टादश मुख्य और रसमय गुण हैं ये केवल अत्यन्तानुरागियों में पाये जाते हैं ।

अब और गुणों के संक्षिप्त अर्थ कहे जाते हैं-सब जीवों पर हित वाञ्छा सहित बर्ताव को कृपालुता गुण कहते हैं ॥१९॥ कोई अपने साथ कैसा भी उपद्रव करे पर उसपर द्रोह कभी न करने को अकृतद्रोहत्व गुण कहते हैं ॥२०॥ सबकी निन्दादि तथा शीत उष्णके उपद्रव सहना और प्रसन्न रहना यह तितिक्षागुण है ॥२१॥ सत्य श्रीरघुनन्दनजी को सार मानते हैं अथवा सत्यवचन बोलना यह सार भूत है। आत्मा (चित्त मन वा देह) का ईर्ष्या मात्सर्य आदि अवद्यों (दोषों) से रहित होना अनवद्यात्मतागुण है ॥२३॥ मित्र शत्रु और उदासीनों के साथ एक दृष्टि से बर्ताव करने को समत्व गुण कहते हैं ॥ २४ ॥ सब जीवों का उपकार करने में रहने को सर्वोपकारित्व गुण कहते हैं ॥२५॥ सबके साथ घमण्ड न करने को निर्दम्भत्वगुण कहते हैं ॥२६॥ काम द्वारा बुद्धि के नहीं हत होने को अकामित्व गुण कहते हैं ॥२७॥ मान-प्रतिष्ठा

तनिक भी न चाहने को वरन् औरों को मान देने को अमानित्व कहते हैं ॥२८॥ मन इन्द्रियों के दमन को शम-दम सम्पन्नता गुण कहते हैं ॥२९॥ धन संग्रह हीनता को अकिञ्चनत्व गुण कहते हैं जगत् के कठोर पदार्थों को तुच्छ जानकर परम कोमल अमल युगल सरकार के रस में लीनता पूर्वक मृदुभाव को मृदुत्व गुण कहते हैं ॥३१॥ शास्त्रानुसार भीतर और बाहर की पवित्रता को शुचित्व गुण कहते हैं ॥३२॥

वस्तुमात्र की चेष्टा से रहित रहते हुए और मन-वचन-कर्म द्वारा सरकार के प्रिय होते हुए प्राकृत ईर्ष्या शून्यता को अनीहत्व गुण कहते हैं ॥३३॥ पाचन शक्ति के अनुसार नित्य एक ही प्रमाण से अल्प भोजन को मितभोक्तृत्व गुण कहते हैं ॥३४॥ अत्यन्त उद्वेग से रहित हो अपने मन को दृढ़ रखने को स्थिरत्वगुण कहते हैं ॥३५॥ सदा मननशीलता को मुनित्व गुण कहते हैं ॥ ३६ ॥ आलस्य और असावधानता के अभाव को अप्रमत्तता गुण कहते हैं ॥३७॥ जिनका चित्त किसी से लक्षित नहीं हो सके कि यह कैसे हैं; उनके उस स्वभाव को गम्भीरता गुण कहते हैं ॥३८॥ महाधृति के धारण को धैर्यगुण कहते हैं ॥३९॥ जरा-मरण-शोक-मोह क्षुधा-पिपासा के विजय को अर्थात् इन्हें अपने स्वरूप से पृथक् मानकर उसके तिरस्कार को षड्गुणजयित्व गुण कहते हैं ॥४०॥ हृदय में सबसे मित्रता रखने और बाहर समभाव रखने को मित्रत्व गुण कहते हैं ॥४१॥ दूसरों को दुःखी देख दयार्द्र हो जाने को कारुण्य कहते हैं ॥४२॥ श्रीरघुनन्दनकृपा से कवित्व विद्वत्व और सर्वसिद्धि सम्पन्नत्व प्राप्त करते हुए अन्य किसी की आशा न रखने को नैराश्य गुण कहते हैं ॥ ४३ ॥ श्रीरघुवर चरणानुरागी सज्जन ऐसे-ऐसे करोड़ों गुणों के निधान होते हैं। जिनका शेषजी भी पार नहीं पा सकते तो हम सरीखों

की बुद्धि ही कितनी जो गुणों का निरूपण कर सके तथापि अपनी वाणी को सफल करने के लिये संक्षेप से कुछ कह दिया गया है ।।

❀ दोहा ❀

श्रीरघुवरबल्लभ परम सन्त रसिक कमनीय।
तिनके गुन गन गुरु अधिक प्रीतम प्रिय रमनीय ।।

युगल अनन्य शरन रच्यो श्रीरघुवर गुन सार।
ता गुन के गाहक रसिक सोऊ गुन निधि हार ।।

इति श्रीयुगलानन्यशरणे बिरचिते हिन्दी भाषा वार्तिकप्रबन्धे श्रीरघुवरगुणदर्पणे श्रीराघवानुरागी सज्जनसद्गुण निदर्शनं नाम चत्वारिंशोऽध्याय: ।।४०।।